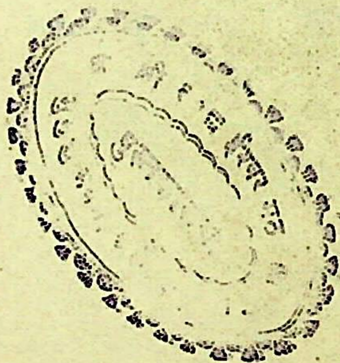


T

T

॥ ॐ ॥

विज्ञान लता

द्वारा प्राप्तव्य

मैं ही ब्रह्म हूँ, इस निश्चय से निर्विकल्प (अभेद) समाधि (प्रज्ञा) करके स्वतंत्र (राग द्वेष से रहित) हुआ जो यति (सद्भावों युक्त) चरति (प्रवृत्तता) है

सो महा त्यागी, सो जीवन्मुक्त,
सो पूजने योग्य, सो राज योगी,
सो परम हंस, सो अवधूत,
सो ब्राह्मण है।

प्रमाण० वेद (स० वा० २७।५) यथा
ब्रह्मैवाहमस्मीति निश्चित्य निर्विकल्पक समाधिना स्वतन्त्रो यतिश्चरति स संन्यासी स मुक्तः स पूज्यः स योगी स परमहंसः सोऽवधूतः स ब्राह्मणः।

लेखक—स्वामी ब्रह्मानन्द जी

सहकारी—स्वामी आत्मानन्द जी

प्रकाशक—ला० श्यामलाल रईस, गौमत वाले।

मूल्य चार आना वि० ।) } अथवा { पठन व मनन करना

T

प्रस्तावना

संसार सागर से उत्तीर्ण होने (तरने) के लिए मुनीश्वर वशिष्ठ जी ने श्री रामजी के प्रति जो उपदेश किया है उसका भाव यह है कि देह व वन्धु जनों और जगत् के पदार्थों में आशक्त होना दोषों व दुःखों का कारण है। यदि वैराग्य व अभ्यास का आचरण किया जावे तो उससे यहाँ सुख व शान्ति की प्राप्ति हो अन्तिम परम पद में स्थिति होती है।

कोई कोई ऐसा कहते हैं कि वैराग्य आदि साधन विरक्तों के लिये हैं, यह कथन ठीक नहीं। देखिये, योगवाशिष्ठ में वैराग्य तथा ब्रह्म अभ्यास के सब प्रसंग गृहस्थियों के हैं।

इस लोक में आनन्द व निर्वाण पद पाने के लिये वैराग्य (संतोष) अभ्यास (विचार) को वेद शास्त्रों में विशेषतया माननीय दृष्टि से इसलिए लिखा है कि साधारण अधिकारी भी कृतार्थ हो सकते हैं।

भगवद्गीता में भी मन की चंचलता व अज्ञान की निवृत्ति के लिए वैराग्य, अभ्यास का ही उपदेश किया है, रामजी व अर्जुन तथा जनक इत्यादि विशेषतया महाराजे थे; यदि ऐसों को वैराग्य-अभ्यास का उपदेश है तो साधारणों का कहना ही क्या।

'अष्टावक्र गीता' के वीस प्रकरणों में उच्च सिद्धान्त वर्णन हुआ है अर्थात् आत्मा निर्विकार, अद्वैत, सदा मुक्त है, सृष्टि की उत्पत्ति व नाश और वन्ध, मोक्ष आदि सब विस्तार मनोमात्र मिथ्या है, अतः मन के भावों को सुधारना मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य है। मुनि अष्टावक्रजी ने प्रवल युक्तियों द्वारा महाराजा जनक को ब्रह्मज्ञान सुनाकर जीवन्मुक्त पद को प्राप्त किया। ऐसी ही मुनि दत्तात्रय कृत जीवन्मुक्ति गीता है, यह तीनों संहिता उच्च श्रेणी की हैं, ऊपर लिखे सब प्रसंग इस पुस्तक में संक्षेप से संग्रह किये गये हैं।

T

निवेदन

योग वाशिष्ठ सार में ५६ प्रसंग रक्खे हैं, इनमें उच्च सिद्धान्त हैं और अष्टावक्र गीता का तो कहना ही क्या।

प्रसंगों के उपयोगी और रहस्यों को बीच में इसलिये लिखा है कि अधिकारी अन्य ग्रंथों के भावों को भी जान सकें। असावधानतावश रही हुई त्रुटियों को सज्जन क्षमा करें। आशा है, आप सहचारियों में भी इस पुस्तक की प्रवृत्ति करायेंगे।

कोई २ पाठक पुस्तक को शीघ्र पढ़कर रख देते हैं, अमृत के नाम लेने से कभी अमर नहीं होसकता, जब लग पिया न जाय।

अतः इस पुस्तक को नित्य पढ़ते हुये अर्थ समझकर धीरे धीरे इसका मनन करके पूर्ण धारणा करनी उत्तम है। इस अर्थ को वेद व वेदान्त शास्त्र में भली प्रकार से वर्णन किया है।

पठन व श्रवण करने से मनन सौ गुणा श्रेष्ठ तथा मनन से निदिध्यासन और शत गुणा उत्तम, इससे भी निर्विकल्प स्वरूप में स्थिति, यह लाखों गुणा अधिक आनन्दप्रद है।१

वेद, वेदान्त के भावों को यथार्थ न जानकर अज्ञानी अधिक भ्रान्ति में पड़ता है, विवेकी (ज्ञानी) सबको यथार्थ निश्चय करके आनन्द सागर में स्थिति पाता है।२

वि० चू १—पं० द० २—मूल प्रमाण

श्रुतेः शत गुणं विद्यान्मननं मननादपि।
निदिध्यासं लक्ष गुणमनन्तं निर्विकल्पकं ॥१
श्रुति तात्पर्यमखिलमबुद्ध्वा भ्राम्यते जड़ः।
विवेकीत्वखिलं बुद्ध्वा तिष्ठत्यानन्द वारिधौ ॥२

ज्ञातव्य

ब्रह्मज्ञान की प्रवृत्ति कराने के लिये ब्रह्माजी ने सात्विकी हृदय से ऋषि वशिष्ठ जी को प्रगट किया, इनको ज्ञान का अवतार व दैवी गुणों का भण्डार कहना चाहिये।

आपके उपदेश से अनेक कृतार्थ हुए और आपने यह भी प्रतिज्ञा की है कि जो योगवाशिष्ठ को सदा विचारेगा वह परम पद को अवश्य प्राप्त होगा। ऐसा क्यों न हो, इस संहिता में उच्च सिद्धान्त भरा है।

अष्टावक्र ऋषि वेद, वेदान्त के पूर्ण ज्ञाता हुए, बाल्यावस्था में वेदों का भाव पिता को बताया था। और राजा जनक के गुप्त प्रश्न का उत्तर देकर अनेक ऋषियों को बन्ध से छुटाया, तथा राजा को अपूर्व उपदेश दिया, यह उपदेश अष्टावक्र गीता नाम से प्रसिद्ध है। केवल निर्विकल्प रूप हुई, यह संहिता अधिक प्रशंसनीय है।

विष्णुजी का अवतार और अवधूतों में शिरोमणि मुनि दत्तात्रेय जी थे, आपने जीवन्मुक्ति गीता निर्माण की है, अलौकिक रहस्य सहित यह प्रकाशित हुई है।

इन तीनों संहिताओं को इस पुस्तक में संग्रह किया है, मनन करने से मुमुक्षु कृतार्थ हो सकता है। इनकी धारणा करना राज योग रूप निर्विकल्प समाधि जानिये।

योग वाशिष्ठ सार का विषय-सूची क्रम

शान्तिः ३ !!!

अष्टावक्र गीता अनुक्रमणिका

सर्व ब्रह्म है।

नाम रूप मिथ्या चरित, भास नरक संसार।
ब्रह्म आत्म अद्वैत लखि, चिदानन्द सद सार।

प्र०—अष्टावक्र गीता। ७-१

मय्यनन्त महाम्भोधौ विश्व पोत इतस्ततः।
भ्रमति स्वांत वातेन न ममास्त्यसहिष्णुता॥

आत्म समुद्र अपार, नवका भाषित विश्व यह।
भ्रमित वायु संस्कार, निर्विकार मैं सदा हूँ॥

❀ ॐ तत्सत् ❀

योग वासिष्ठ सार

——:o:——

विषय सूचना

प्रथम प्रकरण में वैराग्य, द्वितीय में मोक्ष की सहकारी युक्तियाँ, तृतीय में मन से जगत् की उत्पत्ति, चतुर्थ में मनोमात्र विश्व की स्थिति, पंचम में मन के बाध होने से जगत् का उपशम, षष्ठम प्रकरण में मन के अत्यंताभाव निश्चय से ब्रह्मज्ञान से निर्वाण पद की प्राप्ति।

वैराग्य प्रकरण (१)

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर! आपकी कृपा से मैं यह जानता हूँ कि जगत् की सत्य भावना मन से होती है, जैसे बालक शून्य स्थान में वैताल जानकर भय से व्याकुल होता है तैसे ही मनरूपी बालक ने निराकार ब्रह्म के आश्रित संसार के पदार्थों की कल्पना की है, अज्ञानी उसको सत्य जानकर अधिक प्रीति करते हुए सदा पीड़ित रहते हैं।

पदार्थ।

जगत् के पदार्थ विचार किये बिना सुखदाई भासते हैं और विचार से दुःखरूप जान पड़ते हैं। जो मनुष्य देह, कुटुम्ब, द्रव्य आदि में आसक्ति (अहंता, ममता) अधिक करते हैं वे परिणाम में बहुत समय तक कष्ट पाते हैं।

---:o:---

हे मुनीश्वर! अज्ञानी मनुष्य मोह करके बँधा हुआ जगत्-जाल से छूट नहीं सकता। जैसे हरे तृणों से ढकी हुई खाई को देख हरिण खाने की इच्छा से गड्ढे में गिरा हुआ अधिक दुःख पाता है, तैसे ही अज्ञानी मनुष्यों की गति होती है, अतः जगत् के पदार्थों को दुःखरूप जानकर वैराग्य को धारण करना चाहिए।

हे भगवन्! जगत् के पदार्थ अज्ञानता से सत्य भासते हैं और विचार करने पर मिथ्या प्रतीत होते हैं, इनमें आनन्द जानकर आसक्त होना बन्ध है, इसलिए शास्त्रों की युक्तियों से प्रपंच को मिथ्या जानकर स्वरूप में स्थित होने से कल्याण होता है।

जैसे पींजरे में पड़ा हुआ पक्षी उड़ नहीं सकता, तैसे अज्ञानी अहंता, ममतारूप फाँसी से बँधा हुआ परमार्थ को नहीं पा सकता।

जो मनुष्य बन्धुजनों व पदार्थों में अधिक आसक्त होते हैं, उनके वियोग होने पर वह अति कष्ट पाते हैं,

अचानक काल आकर उनको ग्रस लेता है। जैसे सर्प के मुख में पड़ा हुआ मेंढक मच्छरों के खाने की इच्छा करता है और यह नहीं जानता कि मैं सर्प का भोजन हो रहा हूँ, ऐसी ही दशा अज्ञानियों की होती है।

सब पदार्थ भौतिक (पाँचों भूतों का कार्य) हैं, इनमें अध्यास (अहंता) करना अयोग्य है और बन्धु, मित्र आदि सब स्वार्थ के लिए प्रीति करते हैं, जब उनका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता तो आदर नहीं करते। जैसी दशा बूढ़े बैल की होती है, ऐसी ही गति उनकी होती है।

हे मुनीश्वर ! अज्ञानी मनुष्य वासना-जाल में बँधा हुआ घट-माला के समान संसाररूप कुएँ में भ्रमता-भ्रमता शान्ति नहीं पाता, इसलिए मैं संसार में आसक्ति त्याग सदा आत्म-चिंतन करूँगा।

लक्ष्मी।

अविचारी मनुष्य जिस लक्ष्मी को आनन्दरूप जान अधिक तृष्णा करते हैं उसके अभाव होने पर लोभी मनुष्यों को अनेक दुःख सहन करने पड़ते हैं, उनको देखकर मुझे दया आती है। जैसे पशु रस्से से बँधता है, तैसे अविचारी मनुष्य धन आदि की ममता (तृष्णा) से बँधता है। मनुष्य-शरीर को पाकर जो आत्मा का उद्धार नहीं करते वह उन्मत्त हैं।

हे मुनीश्वर! जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तो मनुष्य तृष्णा के प्रवाह में बह जाता है, उसमें समता, कोमलता, गम्भीरता आदि गुण नहीं रहते और गर्व, क्रोध इत्यादि अवगुणों से वह दोषी हुआ संसार-यन्त्र में पिलता है।

हे भगवन्! विष की बेल स्पर्श में कोमल होती है परन्तु खाने से नष्ट करती है, तैसे लक्ष्मी भी सुखदाई भासती है पर तृष्णा के द्वारा कष्टों को प्राप्त करती है। जैसे वेश्या का मन अति चंचल होता है, तैसे ही लक्ष्मी को जानिये।

अनुचित प्रकार से द्रव्य आदि को संग्रह करके जो सुख को लिया चाहे वह मूर्ख है। यदि शास्त्र-रीति से धन आदि उपार्जन करके स्वार्थ व परोपकाररूप कार्यों में उचित प्रकार से लगाये जावें तो गृहस्थियों को दोष व दुःखों का कारण नहीं होते। संतोषपूर्वक द्रव्य आदि पदार्थों का बर्ताव सुखदाई और लोभवश अनुचित व्यवहारों का करना दुःखदाई होता है।

हे मुनीश्वर! जब आप सरीखों की संगति प्राप्त हो तब तृष्णा नष्ट हो और शान्ति को पाकर अधिकारी मोक्ष-भागी बने; इसलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ। अपनी अनुग्रह-दृष्टि से सांसारिक कष्टों से मेरी रक्षा कीजिये।

हे भगवन् ! द्रव्य आदि पदार्थों के संग्रह करने से इच्छा, परिश्रम, कपट, हिंसा, दीनता और रक्षा में भय, गर्व, राग, द्वेष, ईर्षा तथा धन आदि के नष्ट होने से शोक, चिन्ता, भ्रान्ति, अधीरता, व्याकुलता इत्यादि अनेक दुःख व दोष होते हैं, इसलिए द्रव्य आदि सब सम्पत्ति को अनर्थरूप जानकर मैंने उनकी प्रीति त्याग दी है।

हे मुनीश्वर ! वायु का रोकना कठिन है तथापि उसको रोक सकते हैं, पर तृष्णा का रोकना अति कठिन है; इसके होते हुए अज्ञानी मनुष्य बहुत कष्ट पाते हैं, इसलिए मैंने पदार्थों की तृष्णा को त्यागकर आपका आश्रय लिया है।

शरीर।

हे स्वामिन्! स्थूल शरीर अति मलिन है। रज, वीर्य आदि अपवित्र वस्तुओं से इसकी उत्पत्ति होती है और मांस, रुधिर आदि से रक्षित तथा मल, मूत्र आदि संयुक्त नव द्वारों से मैला निकलता रहता है। यदि ऊपर त्वंचा (खाल) न होती तो महान् भयानक और ग्लानिमय जान पड़ता तथा मक्खी, चींटी और पक्षी आदि जन्तुओं से रक्षा करना कठिन हो जाता। इतने पर भी यह शरीर आधि, व्याधि से घिरा रहता है, इसलिए अशुचि व निन्दित देह आदि में आत्मता (अहंता) और ममता करना अज्ञानता है।

हे मुनीश्वर ! बाल अवस्था में चंचलता, मूर्खता, भय, इच्छा तथा रोगों की अधिकता और युवापन में अभिमान, काम, क्रोध, तृष्णा, ईर्षा, तथा वृद्ध अवस्था में मोह, चिन्ता, आसक्ति, निरादर और व्याधियाँ अधिक होती हैं; इसलिए अनेक दोषों व दुःखों सहित तीनों अवस्थाओं को जानकर मैं इनको नहीं चाहता।

प्रपंच।

हे मुनीश्वर ! स्थावर जंगमरूप प्रपंच एक रस नहीं रहता अर्थात् जहाँ पर्वत हो, वहाँ कालान्तर में खाई और जहाँ गड्ढे वहाँ शिखर होते हैं। दैववश महाराजे भिक्षा माँगते हैं; कभी भिक्षुक सम्पत्ति भोगते हैं, सदा आगमापाई (आने जानेवाले) और दुःखदाई जगत् में आसक्ति करना अज्ञानता है, इसलिए मैं सब पदार्थों की आसक्ति को त्यागकर स्वरूप में विश्राम पाऊँगा।

बहुत क्या कहूँ, सृष्टि में बड़े ब्रह्मा, विष्णु, सदाशिव ऐसे भी इच्छा के वश हो असुरों से युद्ध करके पीड़ित होते हैं तो और मनुष्यों का कहना ही क्या। ज्ञानवान् संसार में बन्धायमान नहीं होते, यदि उनको राज्य प्राप्त हो तो भी उसमें विशेष प्रीति नहीं करते।

विचार से देखा जावे तो सांसारिक कोई भी पदार्थ सत्य और सुखदाई नहीं, इनमें लिप्त होना अज्ञानता है, मैं इनकी इच्छा को त्याग कर ब्रह्म-विचार में तत्पर रहूँगा

हे भगवन् ! मैं यह जानता हूँ कि अपने अपने वर्णाश्रम के अनुसार शुभ कर्त्तव्य करते हुए सब कर्म यदि ईश्वर-समर्पण किये जावें तो गृहस्थ में भी आनन्द रहे। अनुचित व्यवहारों के करने से दुःख, दोष नित्यप्रति बढ़ते हैं; इसलिए बड़ी आपत्ति भी सह लेना भला है पर भोगों में लिपायमान होना और सांसारिक पदार्थों की इच्छा करना अनुचित है।

यदि पंडित होकर पदार्थों में आसक्ति करे तो वह दीपक हाथों में लिये कुँए में गिरता है और राज्य को पाकर यदि विशेष भोगों की इच्छा करे तो वह राजा भी दरिद्री के तुल्य है, क्योंकि दोनों संसार में बँधे हुए हैं।

आसक्ति।

हे मुनीश्वर ! वैराग्य, अभ्यास से रहित मनुष्यों को बन का ठूँठ जानिये, उनका जीना व्यर्थ है। जगत् में होना उनका सफल है जो आसक्ति को त्यागकर ब्रह्मज्ञान के लिए यत्न करते हैं। सर्वथा धन्यवाद के योग्य वह हैं कि जिन्होंने अज्ञान को नष्ट करके अद्वैत ब्रह्म में स्थिति पाई है।

बहुत जीना, विशेष सम्पत्ति और अधिक कुटुम्ब इत्यादि पदार्थ सब दुःखदाई हैं। वज्र से चूर्ण होना तथा कोल्हू में पिलना यह भी मैं सह सकूँगा, पर बिना वैराग्य-विचार के मैं जीना नहीं चाहता।

T

हे भगवन् ! सुख, सम्पत्ति को पाकर जो इनमें आसक्ति करते हैं उनके नष्ट होने पर वह सहस्रों गुना अधिक दुःख पाते हैं। जैसे बिजली चंचल है तैसे संसार के पदार्थ क्षणभंगुर हैं। देखते-देखते महाराजे, देवता और असुरगण कुछ काल स्थित रह, अन्त में नाश हो गये, साधारण मनुष्यों का तो कहना ही क्या।

जैसे मृग हरे तृणों को सुखदाई जान, खाता हुआ गढ़े में पड़कर दुःख पाता और बधिक का भोजन होता है, तैसे अज्ञानी मनुष्य भोगों में आसक्ति से कष्टों को सहन करते हैं, अतः भोग-वासनाओं को त्याग मैं आपकी दयालुता से सुखी होऊँगा।

हे स्वामिन् ! बादलों के चलने से चन्द्रमा को चलता बालक जानते हैं तैसे अज्ञानी देह, इन्द्रियों और मन के व्यवहारों में आत्मा को कर्ता, भोक्ता तथा विकारी जानकर संसार-बन्धन में पड़ते हैं। मैं आप की कृपा से निरिच्छित होकर स्थित हूँगा।

अहङ्कार।

हे भगवन् ! जैसे राहु से ग्रसा हुआ चन्द्रमा शीतलता और प्रकाश से हीन होता है, तैसे दुष्ट अहंकार ने मेरे सद्गुणों को नष्ट किया है; आप के अनुग्रह से जब २ विचार द्वारा इसका अभाव होगा तभी मैं शान्ति पाऊँगा।

हे मुनीश्वर ! मेरे को वही युक्ति बताइये कि जिससे अहंकाररूपी पिशाच हृदय से निवृत्त हो। गर्व साधुओं के चित्त को भी मलिन करता है, अभिमान का त्याग करना सुमेरु के चूर्ण करने से भी कठिन है।

हे भगवन् ! परमानन्दस्वरूप को भुलाकर अहंकार ने मुझे अत्यन्त दुःखों से पीड़ित किया है। जैसे सघन बादल जब सूर्य को ढक लेते हैं तब अन्धकार होता है तैसे मेरी बुद्धि को देह-अभिमान ने मलिन किया है, जब सद्शास्त्र व संतजनों के उपदेश से आत्मारूपी सूर्य का प्रकाश (ज्ञान) होगा तब ही मुक्ति होगी।

हे स्वामिन् ! देह-अभिमान सब अनर्थों का कारण है, इसकी विद्यमानता में शीलता, समता, गम्भीरता इत्यादि गुणों का अभाव होता हैं, मैं आप सरीखे महात्माओं के वाक्यों को संग्रह करता रहा हूँ, वह मुझे याद हैं। उन सबका भाव यह है कि जबतक देह से अहंकार दूर न हो तबतक परमपद की प्राप्ति नहीं होती, अतः मैं ब्रह्म-विचार के द्वारा गर्व को त्यागकर स्वस्थ होऊँगा, इसलिए आप ऐसा उपाय बताइये कि जिससे शीघ्र अहंकाररूपी वैताल का हृदय से अभाव हो और शान्त पद को प्राप्त होऊँ।

हे भगवन् ! जड़ व मिथ्या शरीर आदि में अभिमान अज्ञानता से होता है, गर्व असत्य हुआ भी भारे अनर्थों

को प्राप्त करता है, मेरे सद्भावों को इस दुष्ट ने विध्वंस किया है। जो मनुष्य अपने में हुए अनहुए गुणों का अहंकार करते हैं वे सदा बँधे रहते हैं, उनके गुण भी अवगुण रूप होजाते हैं, आत्मरूप चिन्तामणि को ढकनेवाला अहंकार रूप पिटारा है, इसको ब्रह्म-विचार के द्वारा निवृत्त करना उचित है। गर्व अनेक दोषों व आपत्तियों को प्राप्त करता है अर्थात् अभिमानरूपी बैताल अविद्यारूपी रात्रि में विचरता हुआ अज्ञानी मनुष्यों को सदा पीड़ित करता है।

हे मुनीश्वर ! वेदान्त शास्त्र व सद्गुरु के उपदेश द्वारा मिथ्या गर्व के नष्ट होने से परमपद की प्राप्ति होती है। मेरा कर्त्तव्य क्या है और संसार से उद्धार कैसे होगा तथा सत्य व सुखरूप पदार्थ कौन है, यह निर्णय करना और मन इन्द्रियों को रोकना इत्यादि उपायों से अहंकार निवृत्त होता है।

हे मुनीश्वर ! प्राणायाम आदि तपोबल से समाधि काल में यद्यपि अहङ्कार विलय होता है, परन्तु उत्थान होने पर विशेष फैलता है। जैसे हस्ती नदी में स्नान करके किनारे पर आकर शरीर के ऊपर धूलि को अधिक बखेरता है, यही गति ज्ञान के बिना और उपायों से होती है।

बहुत क्या कहूँ, अहङ्कार, भारी व्याधि है, इसका जीतना कठिन है पर साधु-संग व सद्शास्त्र के द्वारा

ब्रह्म-विद्यारूप ओषधि जब प्राप्त होगी, तो दुष्ट अहंकार का मूल सहित नाश होकर शान्ति मिलेगी।

स्त्री।

हे मुनीश्वर! बिना विचार किये कामी पुरुषों को स्त्री सुखदाई जान पड़ती है वरन् अपवित्रता का स्थान व रोगों (दुःखों) की पिटारी है। वस्त्रों व भूषणों सहित तरुणी रमणीय (सुन्दर) भासती है, वास्तव में वह हड्डी, मांस आदि का पिंजर है। स्त्रियों का शरीर सदा मलिन रहता है, जब कुमारी होती हैं तब छोटे भाई-बहनों के खिलाने से और युवापन में सन्तान की सेवा करके तथा वृद्ध हुए नाती आदि के मल-मूत्र से अपवित्र रहती हैं और साधारण स्त्रियों में चंचलता आदि अष्ट अवगुण भी होते हैं।

हे भगवन्! भोगों में आसक्त पुरुष रूपवती स्त्री के अधीन हुआ उचित अनुचित का विचार नहीं कर सकता और कामाग्नि से पीड़ित रहता है, उससे भोगों की तृष्णा और बढ़ती है। विषयी नर, स्त्री को भोग-विलास के लिए समझते हैं इस कारण भोगों में सदा प्रीति करके सत्संग व सद्गुणों से वंचित रहकर दुःख सहते हुए अन्त में असद्गति पाते हैं।

बुद्धिमान् पुरुष एकान्त में स्त्री के संग नहीं रहते और श्रेष्ठ स्त्रियाँ भी पर-पुरुषों के कुसंग से सदा बचती

T

हैं। कारण यह है कि पुरुष का मन घृत के लोंदा समान और स्त्री का संग दीप्त-अग्नि के तुल्य है। कुसंग करके मनुष्य तत्काल कामातुर होता है। कुसंग से महान्-महान् तपस्वी भी पतित हुए हैं, साधारण मनुष्यों की तो कथा ही क्या। इसलिए मैं कुसंग को सर्वथा त्यागकर एकान्त में रहूँगा।

जैसे रोगी को कुपथ्य से बचाने के लिए पदार्थों की निन्दा की जाती है, इसी प्रकार स्त्री की निन्दा पुरुषों के चेतावने-अर्थ शास्त्रों में लिखी है, पर निन्दा के योग्य वह है जिसके कर्त्तव्य बुरे हों, गुणोंवाले सब प्रशंसा करने योग्य हैं।

काल।

हे मुनीश्वर! काल (मृत्यु), दयाहीन, समवर्त्ती और बलवान है, सब देहधारियों को सदा मारता है। ऊँच-नीच व छोटे, बड़े किसी का भेद नहीं मानता, सबको एक समान नष्ट करता है, संसार भर में इसका अधिकार है, काल के दण्ड से कोई अज्ञानी नहीं बचता।

काल ऐसा बलिष्ठ है कि देवता, असुर और मनुष्य तथा चौरासी लाख जन्तुओं को निर्भय होकर सबको एक समान मारता चला आया है, इसको कृतान्त कहते हैं अर्थात् सबका अन्त करता है, महाप्रलय भी काल से होती है।

T

छोटे-बड़े सब मृत्यु पाते देखने में आते हैं। फिर भी विस्तृत वासनाओं से भोगों में फँसकर अज्ञानी दुःख पाते हैं, विचारहीन मनुष्य ऐसे-ऐसे अनुचित व्यवहारों को करते हैं जिससे उनको और अनेक देहधारियों को कष्ट होते हैं। अज्ञानतावश अत्याचारों को मनुष्य करते हुए काल से तनिक भी भय नहीं मानते, यह बहुत भूल है।

हे भगवन् ! परमार्थ पाने के लिए मनुष्य-शरीर पुण्यों के प्रभाव से मिलता है इसको व्यर्थ कार्यों में खो देना मूर्खता है। वह मनुष्य पशुओं से भी नीच हैं जो उचित, अनुचित और सत्य, असत्य का विचार नहीं करते।

हे स्वामिन् ! काल बली को भूलकर प्राणी अपने हित व अनहित को नहीं समझता। जो मृत्यु को याद रखते हैं वह अनुचित प्रवृत्ति से अलग रहते हैं। शव के साथ जाने पर वैराग्य होता है, यदि ऐसी मति सदा रहे, तो मनुष्य सहज में मुक्ति पा सके। इसलिए मैं काल का स्मरण रखता हुआ वैराग्य व अभ्यास के द्वारा संसार से मुक्ति पाऊँगा।

॥ इति वैराग्य प्रकरण ॥

T

मुमुक्षु प्रकरण (२)

पुरुषार्थ।

मुनीश्वर (वसिष्ठजी) बोले, कि हे रामजी! मेरा सिद्धान्त सुनो! जब दर्पण शुद्ध होता है, तो मुख स्पष्ट दीखता है, इसी प्रकार निर्मल हृदय में हित के वाक्य प्रवेश करते हैं। तुम्हारा मन शुद्ध है, अतः ज्ञान-प्राप्ति के लिए मैं उपदेश करता हूँ, उसकी धारणा करके शुकजी के समान तुम जीवन्मुक्त होओगे।

हे भगवन्! जीवन्मुक्ति व विदेह-मुक्ति दोनों का स्वरूप कहिये। मुनीश्वर बोले कि इन दोनों में वास्तव में भेद नहीं, भेद व्यवहार-काल में भासता है, ब्रह्मवेत्ता की दृष्टि में नहीं।

हे रामजी! मनुष्य-शरीर को प्राप्त होकर वासना को त्याग पुरुषार्थ में स्थित होना चाहिए। पुरुषार्थ किसको कहते हैं सो वर्णन करता हूँ।

हे तात! जिस अर्थ को सभी पुरुष चाहें वही पुरुषार्थ है, सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति इसको सब प्राणी चाहते हैं, इसके साधनों को भी शास्त्रों में पुरुषार्थ माना है।

पुरुषार्थ को त्याग दैव का आसरा लेकर जो आलसी होते हैं वह उन्नति नहीं पा सकते; अतः उनका मनुष्य-जन्म सफल नहीं होता, क्योंकि खाना, सोना, भय, भोग

यह सब योनियों में समान होते हैं केवल ब्रह्म का जानना मनुष्यों की उत्तमता है। वेदान्त में लिखा भी है कि ब्रह्मज्ञान हुए बिना शास्त्रों का पठन-पाठन वृथा है और सांसारिक पदार्थों में आसक्त होते हुये ब्रह्मज्ञान की सफलता नहीं होती; तथा जिसको शान्ति प्राप्त नहीं हुई, उसको मन दुःखदाई होता है, ऐसे ही अभिमानी मनुष्यों का शरीर पाना निष्फल है; इसलिए पुरुषार्थ में सदा स्थित रहना मनुष्यों में श्रेष्ठता है वरन् पशुओं व इनमें भेद ही क्या है!

संतोष।

हे रामजी! अज्ञानी मनुष्य आशारूपी फाँसी से बँधा हुआ दुःखी रहता है। तृष्णा बढ़ी हुई कष्टों को प्राप्त करती है, इसके दूर होने से आत्मानन्द की प्राप्ति होती है, इसलिए मुमुक्षुओं को वैराग्य और ब्रह्म-अभ्यास करना चाहिए।

हे तात! सुख सम्पत्ति को पाकर संतोष नहीं होता, किन्तु लोभ और बढ़ता है। जिसको कल्याण की इच्छा हो वह सदा आत्मा का विचार करे। विचार व संतोष हुए बिना चक्रवर्ती को भी सुख नहीं होता। शास्त्रों में यह लिखा है कि धीरजरूप पिता, क्षमारूपी माता, बिचाररूप मित्र, सत्यभाव पुत्र, शान्ति स्त्री, दया बहन, मनोनिग्रह भाई, संतोष मन्त्री, ब्रह्मज्ञान सिंहासन, ऐसी उत्तम विभूति और समाज सहित विद्वान् को यहाँ

आनन्द और अन्त में कैवल्य-पद की प्राप्ति सहज में होती है।

हे रामजी! कड़वी बेल के समान अज्ञानी मनुष्यों में विकार बढ़ते रहते हैं; इसलिए वैराग्य, ब्रह्म-अभ्यास करना उचित है और उपायों से दोष, दुःख दूर नहीं होते, वेद वेदान्त का सार मैंने दर्शाया, अब और सुनो! अन्धे कुँए में सर्प होना, सूखे वृक्ष की खोड़र में मच्छर बनना और मैले की मोरी में मेंढक हो रहना भला है; परन्तु विचार के बिना जीना श्रेष्ठ नहीं। जैसे कँटयारी के पेड़ में काँटे गुथते हैं तैसे ममता आदि विकार अज्ञानियों में बढ़ते हैं, सब दोषों का कारण जो अज्ञान है वह ब्रह्म-अभ्यास से नष्ट होता है।

द्वारपाल।

हे रामजी! मोक्षरूप दरबार के शम, संतोष, विचार, सत्संग यह चारों द्वारपाल हैं, इनके अर्थ श्रवण करो।

वासना की निवृत्ति (शम) यथा प्राप्त में प्रसन्नता से निर्वाह करना (संतोष), सत्य व असत्य का निर्णय होना (विचार), सद्गुरु आदि के द्वारा ब्रह्म का निश्चय जिससे हो वह (सत्संग), इनकी धारणा करने से कैवल्य पद की प्राप्ति होती है, चारों की यदि एक-संग धारणा न हो सके, तो धीरे-धीरे इनका अभ्यास करना उचित है।

हे रामजी ! जबतक अविचार है तब लग शान्ति प्राप्ति नहीं होती, मेरा निश्चय तो यह है कि हाथों में सकोरा लेकर चाण्डालों के गृहों में से भिक्षा माँग-माँग खाना भला है पर सद्विचार के बिना जीना श्रेष्ठ नहीं।

ज्ञान-बन्ध।

स्वार्थ के लिए शास्त्र आदि का पठन-पाठन करने-वाले व प्रवृत्ति में लगे हुए और सिद्धियों में आसक्त रहने-वाले इत्यादि मनुष्य ज्ञान-बन्ध हैं, इनसे साधारण मनुष्य भी श्रेष्ठ हैं। इन मनुष्यों का ज्ञान ज्ञानाभास है उससे परमार्थ का लाभ नहीं होता इसलिए तुम अनात्म पदार्थों से आसक्ति को त्यागकर यथार्थ ज्ञानी बनो। ज्ञान के लिए ऐसे विचार करो कि आकाश आदि भूतों का विकार यह स्थूल शरीर मैं नहीं और प्राण भी जड़-रूप हैं तथा इन्द्रियाँ व मन, बुद्धि आदि सब अविद्या के कार्य मिथ्या हैं और मैं स्वयंप्रकाश, अद्वैत, आनन्द, सर्वत्र पूर्ण हूँ, इस निश्चय के प्रभाव से सब दुःखों का अत्यंताभाव होकर परमपद में स्थिति होती है, उस पद को वेद, 'नेति-नेति' वाक्यों से जनाते हैं, तथा सद्गुरु की उत्तम युक्तियों के द्वारा आवरण (अज्ञान) को निवृत्त करके विद्वान् स्वरूप में स्थिति पाते और प्रारब्ध को भोगकर अन्त में विदेह कैवल्य-पद को प्राप्त होते हैं।

तुम भी जीवन्मुक्त होकर यथाप्राप्त व्यवहारों को करते हुए परमपद में विश्राम पाओगे।

हे रामजी! जगत् में सत्यता व सुखरूपता को त्यागकर जब आत्मा का ज्ञान होता है तब शेष कर्त्तव्य नहीं रहता, इसलिए अनुचित प्रवृत्ति व अनात्म वासनाओं को त्याग एकान्त में स्थित होकर सदा ब्रह्म की भावना करो।

युक्तियाँ।

सद्‌शास्त्र व सद्‌गुरु, जो जो दृष्टान्त आदि युक्ति वर्णन करते हैं उनका वही अंश अंगीकार करना योग्य है। जो दृष्टान्त से मिलता हो, सभी अंशों के मिलाने पर संशय निवृत्त नहीं होते, कारण यह है कि अनात्मरूप दृष्टान्त का आत्मरूप दार्ष्टान्त में सब अंशों का मिलना असम्भव है, अतः सब अंशों के घटाने पर अधिक भ्रान्ति होती है।

हे तात! ब्रह्मवेत्ता के व्यवहार आदि में दोष न देखते हुये, उनके उचित वाक्यों का विचार करना चाहिए। जैसे दीपक के प्रकाश से प्रयोजन है इसी प्रकार सद्‌गुरु के वाक्यों में पूर्ण श्रद्धा रखकर ब्रह्म-अभ्यास में स्थित होना मुमुक्षुओं का कर्त्तव्य है।

हे रामजी! युक्ति व प्रमाण सहित अद्वैत-पद के बोधक साधारण मनुष्यों के वाक्य भी स्वीकार करने

योग्य हैं और युक्ति आदि से रहित ब्रह्माजी का भी कथन आदरणीय नहीं, यथार्थ वाक्यों के अभ्यास द्वारा ब्रह्मज्ञान को पाकर कृतकृत्यता प्राप्त होती है। मेरा भी आशीर्वाद यह है कि तुम योग वासिष्ठ को धीरे-धीरे विचार-कर उसको धारणा द्वारा ब्रह्म-पद को निश्चय करके जीवन्मुक्त होगे, पश्चात् राज-काज आदि कार्यों को यथोचित रीति से करते हुए विराजमान होओ, तुम्हारा फिर जन्म न होगा, किन्तु शिव अद्वैत-निर्वाण-पद में स्थित होगे।

॥ इति मुमुक्ष प्रकरण ॥

उत्पत्ति प्रकरण (३)

संसार।

मुनीश्वर बोले, हे रामजी! संसार मन से उत्पन्न होता है, जगत् किस में और कैसे हुआ ऐसा विकल्प (संशय) करना व्यर्थ है। स्वप्न अवस्था में विचित्ररूप संसार जैसे मन की वासनाओं से भासता है तैसे यह जगत् भी जानो। वास्तव में प्रपंच है नहीं, चैतन्य में मिथ्यारूप स्पंदता (फुरणा) हुई, वह मन हुआ, उसने सृष्टि रची है।

जैसे निद्रा-दोष से स्वप्न अवस्था में पर्वत, समुद्र, आकाश, काल आदि विस्तृत रचना भासती है और बोध होने पर कुछ नहीं रहता, ऐसे ही सब जगत् मन की फुरणा है।

जाग्रत व स्वप्न और परलोक, इन तीनों में वास्तव में भेद नहीं, यह अपने अपने काल में सत्य भासते हैं और दूसरी अवस्था (दशा) में इनका अभाव होता है। सब में सार चैतन्य तत्त्व है। उपदेश के लिए सर्वज्ञों ने ब्रह्म, आत्मा, अक्षर, अद्वैत और सच्चिदानन्द इत्यादि उस तत्त्व के नाम रक्खे हैं, परमार्थ से सब शब्दों व अर्थों से परे वह पद है, उसमें उत्पत्ति, प्रलय और बन्ध मोक्ष आदि सब विस्तार मिथ्या है। जैसे जल में तरंग और स्वर्ण में भूषण कल्पित (मिथ्या) होते हैं, तैसे यह संसार भी सत्य नहीं, अनउपजा हो मन के फ़ुरणे से उपजा भासता है। पत्तों के तोड़ने से जैसे वृक्ष नष्ट नहीं होता तैसे जप, तप आदि उपायों से प्रपंच का अभाव नहीं होता। जब अज्ञानरूप मन की वासना का नाश हो तो संसार का अभाव होवे।

जैसे धाय (दासी) बच्चों के लिए मन से कल्प करके कहानी सुनाती हैं, वह केवल मनका विलास और परिचय है, तैसे यह सब जगत् मनोमात्र असत्य है।

माया।

हे रामजी ! माया, प्रकृति, अविद्या, अहंकार, वासना, फ़ुरणा और मन इत्यादि सब आरोप (कल्पना) व्यवहार दशा में हैं वास्तव में नहीं, जो होवे नहीं और भासे उसको शास्त्र माया कहते हैं, ऐसे ही ऊपर कहे

सब नाम असत्य हैं। अतः मायारूप मन से रचा हुआ संसाररूप विसूचिका रोग ब्रह्म-विचार से शान्त होता है। जो उपजता है वह नाश होता है और जो बँधा है वह मुक्ति पाता है, पर यह व्यवहार है, अद्वैत ब्रह्म में माया व मन आदि सबका अत्यन्ताभाव है।

जैसे पलकों के बन्द करने से अँधियारा और हथेली से नेत्रों को मलने पर आकाश में तरुवरे भासते हैं, तैसे ही स्वरूप के अज्ञान और विक्षेप द्वारा त्रिगुणरूप सृष्टि भासती है, जब इसके कारण मन आदि का विचार किया जावे तो इसका असत्य निश्चय होता है।

जिस प्रकार मध्याह्न (दोपहर) को सूर्य के तेजकर मरुभूमि में अनहुई नदी भास आती है, तैसे निरंजन पद में माया आदि तीनों काल में सत्य नहीं, यह सब आडम्बर अज्ञानियों के मन में है। कारण, कार्यरूप सब विस्तार को विद्वान् स्वप्न के समान असत्य जानता है।

सर्वज्ञ लिखते हैं कि ईश्वर की शक्ति (माया) से महत्तत्त्व, अहङ्कार, पंच-तन्मात्रा और आकाशादि पाँच भूत क्रम से हुए, उसके पश्चात् सृष्टिं हुई। यह लेख अज्ञानियों के हृदय में दृढ़ हुए संस्कारों का अनुवाद (आरोप) हैं। आरोप करके पश्चात् सद्युक्तियों के द्वारा कारण, कार्यरूप सब रचना को शास्त्र मिथ्या लिखते हैं, परन्तु तब भी समझ में आना कठिन होता है,

जो बिना आरोप किये माया व प्रपंच को असत्य कहते तो समझ में कैसे आ सकता था।

शास्त्रकारों ने यह लिखा है, माया व संसाररूप सब रचना विद्वानों को असत्य व युक्तियों में निपुण पण्डितों को अनिर्वचनीय और अज्ञानियों को सत्य भासती है।

हे रामजी! ईश्वर-सृष्टि व जीव-सृष्टि दोनों संकल्प-मात्र हैं, इनमें भेद इतना है कि ईश्वर-रचित जगत् बन्ध का हेतु नहीं, और अल्पज्ञ व मलिन वासनावाले जीवों की रची सृष्टि दुःखी (बन्धन) करती है। ईश्वर की उपाधि उसके स्वरूप को ढकती नहीं, इसलिए ईश्वर सदा मुक्त है और जीव की उपाधि अविद्या उसके स्वरूप को आवरण करती है, अतः जीव की सृष्टि में बन्ध, मोक्ष हैं, वास्तव में बन्ध (संसार) का अत्यन्ता-भाव है।

मन।

हे रामजी! वासना की दृढ़तारूप जो मन है, उससे जगत् की उत्पत्ति होती है। मन को विश्वकर्मा जानो अर्थात् स्वप्न सृष्टि के समान मन ही संसार को रचता है और अज्ञान से जगत् सत्य भासता है।

जैसे इन्द्रजाली अनेक पदार्थों की रचना करके फिर उसको लय करता है, तैसे प्रपंच का उदय व अस्त

करनेवाला इन्द्रजाली मन है। इसका रचा संसार अज्ञानियों को सत्य भासता है और ज्ञान होने पर असत्य जान पड़ता है।

सन्निपात से जब रोगी पीड़ित होता है तब विपरीत जानता व कहता है, तैसे त्रय गुणात्मक त्रिदोषरूप वासना सहित अज्ञानी मिथ्यारूप संसार को सत्य मानकर व्यवहार करते हुए बन्धन में पड़ते हैं।

॥ इति उत्पत्ति प्रकरण ॥

स्थिति प्रकरण (४)

फुरणा।

हे रामजी ! धूलि क्षुभायमान भी हो पर वायु का वेग अधिक न हो तो उड़ नहीं सकती, पर जब वायु प्रबल होती है तो स्थिर रेत को भी उड़ा ले जाती है। शरीर पड़ा रहता है, फुरणों से मन स्वप्न में अनेक पदार्थों को रचता है। स्वप्न के पदार्थ स्थाई नहीं किन्तु नये उत्पन्न होते हैं। यदि वासना का वेग दूर हो तो जगत् भी अनस्थिर भासे। जैसे पहिया जब अति वेग से घूमता है तब स्थिर-सा भासता है, तैसे मन के तीव्र संवेग से जगत् स्थिर हुआ दीख पड़ता है। मन अति चंचल (शीघ्रगतिवाला) है; इसलिए संसार का चक्कर स्थाई भासता है, पर ज्ञानी इसकी स्थिति को मनोमात्र (असत्य) जानता है।

हे रामजी! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, यह चार पदार्थ हैं। जिस में दृढ़ होकर मन लगता है वह सिद्ध होता है, इसलिये तुम संसार में सत्यता को त्यागकर आत्मा को दृढ़ भावना से परमपद को प्राप्त होओ!

हे रामजी! जैसे नदी में नवका चलती है तो उसमें स्थित हुए मनुष्यों के आकार व व्यवहार जल में स्पष्ट भासते हैं पर जल में आकार आदि तीनों कालों में सत्य नहीं, तैसे संस्काररूप नाव में भरे हुए जगत् के व्यवहार चैतन्यरूप जल में भासते हुए भी सब अभाव-रूप हैं।

जैसे नटवर नटशाला में अनेक रंग रंजना सहित पदार्थों व मनुष्यों को प्रत्यक्ष दिखाता है और देखने-वालों को यज्ञ व युद्ध आदि रचना सत्य सी भासती है जैसे वह अनहुई रचना स्थाई व सत्य भासती है तैसे इस संसार को भी मन का नाटक जानो।

हे रामजी! शुद्ध आकाश में नीलता मनुष्यों को स्पष्ट भासती है वह प्रतीत होती हुई भी आकाश में नहीं। जहाँ नेत्रों की दृष्टि (ज्योति) रुक जाती हैं वहाँ आकाश में नीलता भासती है और कढ़हा व तम्बू की भाँति भी जान पड़ती है, चतुर मनुष्य जानते हैं नीलता भासती हुई भी सत्य नहीं, तैसे शुद्ध ब्रह्म में अज्ञानता से प्रपंच स्थित भासता है।

दर्पण के सामने जब मुख किया जावे तब शरीर दर्पण में प्रतिबिंबित होता है, बालक उसको सत्य जान-कर लीला करता है और मूर्ख बंदर अपने से भिन्न जान-कर दर्पण पर फैलता है, तैसे अज्ञानी चिदादर्श में जगत् की स्थिति (सत्यता) मानकर राग, द्वेष आदि संयुक्त अनेक व्यवहारों को करते हुए संसार-बन्धन में पड़ते हैं।

मैत्री।

हे रामजी! आत्मज्ञान मन की शुद्धि से होता है, वह शुद्धि सद्भावों के संग्रह करने से शीघ्र प्राप्त होती है। सब प्राणियों के सुख चाहने से मन पवित्र बनता है सांसारिक दुःखों से मुक्त होने के लिए इस युक्ति से बढ़कर दूसरा उपाय नहीं।

जो कुछ भी व्यवहार आत्मा (अपने) को दुःखदाई हैं वह किसी अन्य के साथ न किये जावें किन्तु निःस्वार्थ होकर सबमें मैत्री का अभ्यास होने से मन अतिशय निर्मल होता है और आत्मा, परमात्मा में भेद नहीं रहता।

हे रामजी! जो मनुष्य किसी को कष्ट नहीं देता वह ज्ञानी है; द्रव्य आदि को अन्याय से जो नहीं लेता उसको सर्वस्व दानी समझिये; द्वेष व निन्दा का जो त्याग करता है उसको श्रेष्ठ तपस्वी जानो; विषय वासनाओं से रहित सज्जन तीर्थों को भी पवित्र करता

है ; इसलिए और सब उपायों को त्यागकर मन के भावों को शुद्ध करना सर्वोत्तम धारणा है।

हे रामजी ! सुहृदता, शीलता (मधुर भाषण) समता (प्राणीमात्र में समदृष्टि), यह लक्षण जिनमें हों वह परमेश्वर का अंग (स्वरूप) हैं।

ऐसी धारणा करने में देह आदि का परिश्रम व द्रव्य की विशेष आवश्यकता नहीं, किन्तु इसका अभ्यास करने से परमसिद्धता प्राप्त होती है। मैं यह जानता हूँ कि जिसके हृदय में सद्भाव हैं ऐसे सज्जनों की देवता भी अनुग्रह चाहते हैं, इसलिए तुम मैत्री आदि के अभ्यास से शीघ्र ब्रह्मज्ञानी होओ।

॥ इति स्थिति प्रकरण ॥

उपशम प्रकरण (५)

शान्ति।

हे रामजी ! अदृष्ट सिद्धों की गीता के उपदेश को श्रवण करके राजा जनक जिस प्रकार से सब वासनाओं को त्याग करके शान्त हुआ वह सुनो—

द्रष्टा, दृश्य के संयोग होने से हृदय में जो आनन्द स्फुरण होता है वह आत्मानन्द के लवलेश से प्रकट होता है। उससे ही सब प्राणी सुखी हुए जीवते हैं, उसी आत्मा का हम सदा ध्यान करते हैं।

प्रमाता, प्रमाण, प्रमेयरूप त्रिपुटि को मिथ्या जानकर सबमें पूर्ण जो चैतन्य देव है उसका हम चिन्तन करते हैं। विश्व का आधार और भाव, अभाव का साक्षी (आत्मा) परमानन्दस्वरूप हमारा लक्ष्य है।

परमहंसों कर सेवनीय सोऽहं, इस ज्ञान का विषय शिव तत्त्व है, उस चैतन्य देव की आराधना करते हम शान्त हुए हैं, अनादि अकृत्रिम ब्रह्म को त्यागकर जो अन्य देवों की उपासना करते हैं वह कैवल्य भाव को प्राप्त नहीं होते।

हे रामजी ! राजा जनक ब्रह्मज्ञान को पाकर जीवन्मुक्त हुआ और राज-काज आदि सब व्यवहारों को करता सदा असंग व शान्त रहा, इसी क्रम से तुम भी ब्रह्मज्ञानी हुए यथा प्रारब्ध, यज्ञ व युद्ध आदि को करते हुए जीवन्मुक्त पद में स्थित होओगे तब शेष कर्त्तव्य कुछ नहीं रहेगा।

जीवन्मुक्त ।

हे भगवन् ! जीवन्मुक्तों को अन्ध, जड़, मूक, उन्मत्त शास्त्रों में लिखा है। वह राज-पालन आदि व्यवहारों को कैसे कर सकता है।

हे रामजी ! जीवन्मुक्त—अन्धा, जड़, गूँगा और बावला नहीं होता, किन्तु राजा जनक के समान यथा प्रारब्ध सब चेष्टाएँ करता है, विपर्ययों के अभाव होने से

गौणी वृत्ति कर जीवन्मुक्तों की दशाएँ जैसी लिखी हैं वह सुनो।

जगत् को सत्य न देखने से अन्धवत्, देह आदि को अनात्मा जड़ जानने से जड़वत् निर्वाच्य पद में स्थिति होने से मूकवत् आत्मा में कर्तृत्व, भोक्तृत्व के अभाव जानने से जीवन्मुक्तों को उन्मत्तवत् वेद, वेदान्त में वर्णन किया है।

द्वितीय व्यवस्था वह है, त्यागी विद्वान् पदार्थों व संसारी मनुष्यों के संग से बचने के लिए बावलों के समान विचरते हैं पर हृदय में उनके पूर्ण ज्ञान होता है।

हे रामजी! ब्रह्मज्ञानी सब जीवन्मुक्त हैं अर्थात् जो जीवत् व्यवहार करता आत्मा को मुक्त जानता है वही जीवन्मुक्त है, उसका शरीर वज्र से चूर्ण अथवा फूलों से पूजित होवे उन सब व्यवहारों को ज्ञान द्वारा मिथ्या जानता है।

अनेक वेद-वाक्य, ब्रह्मवेत्ता को ब्रह्मरूप वर्णन करते हैं तो बताइये उन ज्ञानियों का जीवन्मुक्तों से भेद क्या हो सकता है।

हे रामजी! ब्रह्मवेत्ता (विद्वान्) किसी भी दशा में स्थित हो वह सदा जीवन्मुक्त है। देखिये, बृहस्पति देवताओं के और शुक्रजी असुरों के हित के लिए अनेक प्रवृत्ति व वासनाएँ करते हैं तो भी, जीवन्मुक्त हैं तथा

प्रह्लादजी कल्प भर व्यवहारी हुए और बलिजी कोटि वर्षों तक राज्य सम्पत्ति भोगते हुए और निमुच दैत्य वृत्रासुर, अन्धक आदि विद्वान् देवताओं से युद्ध करते हुए जीवन्मुक्त पद में स्थित रहे, यह मेरा कहना असत्य नहीं।

हे रामजी ! तुम भी ब्रह्मज्ञान को पाकर जीवन्मुक्त हुए राज्य के व्यवहारों को करते हुए सदा असंग रहोगे।

चैतन्य।

हे तात् ! अपने गुरु शुक्रजी से असुर बलिजी यह पूछते भये कि हे गुरो ! ब्रह्माण्ड में स्थित कौन है ? उसका प्रमाण कितना है ? यह जगत् क्या है ? मैं कौन हूँ ? और तुम्हारा स्वरूप क्या है ?

शुक्रजी बोले चतुर्दश भुवनों में चैतन्य पूर्ण है, सब जगत् उसी में स्थित है और चैतन्य ही सबकी सीमा है, तुम भी चैतन्य हो तथा मैं भी चैतन्य हूँ। सब वेद वेदान्त का यह सार संक्षेप मैंने सुनाया है, तुम भली प्रकार से इस अर्थ को विचारोगे तो जीवन्मुक्त होकर पृथ्वी के व्यवहार करते हुए मन के उपशम (शान्त) होने से अलिप्त रहोगे।

हे रामजी ! उस चैतन्य तत्त्व को जो नहीं जानते वह जन्मान्ध के समान चौरासी के चक्कर में सदा भ्रमते हैं, इसलिए तुम जगत् की सत्यता को त्याग चैतन्य

ब्रह्म में स्थित होओ, और सुख, दुःख आदि सबको मिथ्या तथा आत्मा को निर्विकार समझकर अनेक कार्यों को करते तुम सदा जीवन्मुक्त रहोगे।

विचार।

हे रामजी! संतजनों और सद्शास्त्रों की युक्तियों के द्वारा मन पर अधिकारी जब विजय पाता है तब अविद्या-रूप मैल दूर होकर आत्म-विचार से अद्वैत-पद में स्थिति होती है।

आँधी के वेग से गर्दा जब आकाश में पूर्ण होता है तब समीप वस्तु भी नहीं दीखती, तैसे विक्षेपरूप वासना से जब मन मलिन होता है तब अपना स्वरूप नहीं भासता, विचाररूपी वर्षा से जब दृष्टि स्वच्छ हो तब ब्रह्म-बोध होता है।

हे रामजी! सांसारिक वासनाएँ अनेक दुःखों का कारण हैं, वैराग्य सहित जब ब्रह्म-अभ्यास किया जावे तब आत्मा निर्विकार निश्चय होगा। कामनारूपी धूलि हृदय को मलिन करके शान्ति को नष्ट करती है जब आत्मविचाररूप क़िले में प्रवेश हो तो उपशम होकर अधिकारी पूर्ण ज्ञान को प्राप्त होता है।

हे रामजी! संसाररूप वृक्ष में अज्ञानरूप रस है। यह तरु विपर्य्य वासनारूप जलकर हरा हुआ राग-द्वेषरूप खाद से बढ़ता है, जब विचार-रूप कुल्हाड़े से

इसको काटकर ज्ञानरूप कल्प तरु को पालना हो तो दुःख व दरिद्रता दूर होजावे।

हे तात् ! लीला से मन अनेक संकल्पों को उठाता है और संसाररूप गढ़े में जीव को गिराकर कष्टों को प्राप्त कराता है, उन वासनाओं को जब ब्रह्म-विचार द्वारा उपशम किया जावे तो निजात्मा में विश्राम होगा।

हे रामजी ! अहंकाररूप मेघ में स्वार्थरूप श्यामता जब विशेष होती है उससे अनेक दोष व दुःखमय ओलों की वर्षा होती है, उससे प्राणी व्याकुल होता है। जब विवेकरूप तीक्ष्ण वायु चले तो अहंता, ममता, निवृत्त होकर शान्त प्राप्त हो।

अभ्यास।

हे रामजी ! चित्त-चोर ने मनुष्य के आत्मज्ञान-रूप सर्वस्व को हर लिया है। साधु-संग व सद्शास्त्रों के प्रकाश से प्राप्त हुए अभ्यास के द्वारा जब ब्रह्मरूप चिन्तामणि प्राप्त हो तो दरिद्रता दूर होकर आनन्द मिले।

मुमुक्षु जब संसार से अपना उद्धार किया चाहे तब ब्रह्मविद्या की धारणा से आत्मज्ञान पावे वरन् मनरूप ग्राह से बचना कठिन होगा।

बुद्धिरूप हंसनी, इष्ट-अनिष्ट के जाल में फँसी हुई सदा कष्ट पाती है, जब इससे छूटकर ब्रह्म-ध्यानरूप सरोवर पर पहुँचे तब शान्ति पावे।

हे रामजी ! वायु के वेग से समुद्र में अनेक तरंग उठते हैं, तैसे विपर्य्य वासना की वृद्धि से ब्रह्म-सागर में काम, क्रोध आदि अनेक प्रकार के विक्षेप होते हैं, जब आत्म-अभ्यासरूप जहाज़ मिले तब दुःख नष्ट होकर उपशम पद की प्राप्ति होवे।

अज्ञानी मनुष्य जब पदार्थों में आसक्ति करता है तब इच्छाएँ अधिक फैलती हैं; इसलिए मुमुक्षु सांसारिक वासनाओं को त्याग जब आत्म-चिन्तन करे तब परमानन्दस्वरूप की प्राप्ति हो।

जैसे शून्य स्थान में बालकों को भय होता है तैसे विचार से रहित शून्य-हृदयवाले अज्ञानी तीनों तापों से सदा पीड़ित रहते हैं और ब्रह्म का मनन करने से विपर्य्य सब निवृत्त होकर उपशम पद की प्राप्ति होती है।

हे रामजी ! समाहित-चित्त विद्वान् जो जो व्यवहार करता है वह सब उसको आनन्ददायक होते हैं अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ (ज्ञानी) सर्वत्र आसक्ति त्याग कर चेष्टा करता है तब कोई दुःख स्पर्श नहीं करता, उसका करना व न करना सब सुख का कारण है। जो अनिच्छित प्राप्त हुए योग्य-कार्यों को हठ करके त्याग करता है वह आकाश को मुट्ठी में लिया चाहता है। इसलिए उचित यह है पतित प्रवाह (यथा प्रारब्ध) जो कुछ भी प्राप्त हो अहंकार को छोड़कर और संतोषी हो ब्रह्म

ध्यान में तत्पर रहना यह धारणा सब आनन्द की अवधि है।

समाधि।

हे रामजी! ब्रह्मस्वरूप के अज्ञान से वासना में लिप्त हुआ मनुष्य अनेक प्रकार के कष्टों को सहन करता है और विवेक द्वारा तृष्णा को त्याग कर आत्मा का अनुभव होना यह सुखजनक समाधि है।

जाग्रत अवस्था में मन के धर्मों का सर्वथा अभाव नहीं हो सकता, इसलिये प्रारब्ध के अनुसार व्यवहारों को करते हुए भी ज्ञानी की नित्य समाधि है।

हे रामजी! संस्काररूप मन के उदय होने से जगत् की उत्पत्ति तथा विक्षेप से संसार की स्थिति, और मन की वासना शान्त होने से प्रपंच का उपशम होता है, इसलिए वैराग्य, अभ्यास से वासनाओं का अभाव निश्चय करना योग्य है।

जो मनुष्य पुरुषार्थ से मन की वासनाओं को शान्त नहीं करते उनको सदा उत्थान (विक्षेप) रहता है, समाधि उसकी होती है जो मनोनाश, वासना क्षय और तत्त्व-ज्ञान का सदा अभ्यास करता है।

संतों के उपदेश व सद्शास्त्रों के अनुसार अभ्यास करने से उपशम अवस्था सहज में प्राप्त होती है, इसको समाधि जानो वाह्य वासनाओं को त्यागकर मन को

उपशम करना आनन्द को प्राप्त कराता है। मन को चंचलता होना ही समाधि से उत्थान है और ब्रह्मज्ञान को पाकर विपर्य्य वासनाओं का बाध (मिथ्या निश्चय) करना उत्तम समाधि है।

यद्यपि मन का सर्वथा एकाग्र होना कठिन है, परन्तु ब्रह्म-बोध से विपरीत भावना को शान्त करके निर्वासनिक होने पर उपशमतारूप समाधि होती है, इसलिये तुम संसार की सत्यता को त्याग करके उपशम (समाधिवान) होवो।

सिद्धासन लगाकर ब्रह्मांजलि को धार मौनरूप स्थिति यह साधन हठयोगरूप क्रिया है और ब्रह्म अभ्यास से ज्ञान की दृढ़ता, यह राजयोगरूप पूर्ण समाधि है, विद्वान् इसी निष्ठा को परमसिद्धता जानते हैं और भेद ज्ञान यह उत्थान कहाता है। इस से अनेक वासनाएँ फैलती हैं।

सब विपर्य्यों की निवृत्ति हुए अद्वैत ब्रह्म की दृढ़ धारणा यह अचल समाधि है, इस से उत्थान नहीं होता। जड़ समाधि से जब उत्थान होता है तो अहंकार आदि अनेक वासनाएँ प्रकट होकर अति विक्षेप को प्राप्त करती हैं। परन्तु जब निष्कामता से हठयोग समाधि करते हैं तब हृदय निर्मल होकर उन्हें शीघ्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है।

संशोधन।

हे रामजी! वह समाधि संशोधन से प्राप्त हो

सकती है, युक्तियों से जीव ब्रह्म की एकता का निर्णय करना संशोधन कहाता है अर्थात् सद्गुरु द्वारा महावाक्य को श्रवण करने से अदृढ़ ब्रह्मज्ञान और पश्चात् अभेद अर्थ को उपर्युक्त रीति से मनन करने से ज्ञान दृढ़ होता है।

यद्यपि ब्रह्म, माया, ईश्वर, जीव व इनका परस्पर भेद और संबन्ध यह षट् अनादि हैं, पर ज्ञान के द्वारा ब्रह्म से भिन्न माया आदि पाँचों का बाध होता है, अतः यह पाँच अनादि शान्ति हैं।

अब सृष्टि का क्रम सुनो। आकाश आदि पाँचं भूतों के मिले हुए सात्त्विक अंश से अन्तःकरण और इन भूतों के भिन्न भिन्न सात्त्विक अंश से पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ क्रम से हुईं और मिले हुए भूतों के रजो अंश से पाँचों प्राण तथा भिन्न-भिन्न भूतों के रजो अंश से क्रम पूर्वक वाक् आदि पाँचों कर्म इन्द्रियाँ होती हैं और उन्हीं पाँचों भूतों का पंचीकरण ऐसे होता है अर्थात् एक एक भूत के दो दो भाग हुए। एक आधा भाग अपना अपना सब भूतों में और दूसरे आधे भाग के और चार चार भाग होकर अन्य चारों भूतों में जब क्रम से मिलते हैं तब स्थूल शरीर बनता है। कारण यह पाँचों भूतों के अंश सब शरीरों में प्रत्यक्ष भासते हैं, इससे स्पष्ट हुआ कि पूर्व कहे हुए सत्रह सूक्ष्म तत्त्व और स्थूल शरीर यह सब समाज भूतों से बनता है, इसलिए जड़ (दृश्यरूप)

हैं और मैं सब का साक्षी (जाननेवाला) इन से न्यारा चैतन्य हूँ, यही संशोधन है।

हे रामजी ! आत्मा को ढकनेवाले, अन्न, प्राण, मनोविज्ञान और आनन्दमय यह पाँच कोष हैं, इनको आत्मा मानने से ब्रह्म-बोध नहीं होता। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी (तुर्या) रूप मैं हूँ। यह अवस्थाएँ बदलनेवाली (विकारी) व दृश्य-रूप हैं। तथा मैं अस्ति, भाति, प्रिय अर्थात् सच्चिदानंद-रूप सदा स्वयं-प्रकाश हूँ। और ब्रह्म, आत्मा, साक्षी इत्यादि विधेय विशेषण साक्षात् और अद्वैत, अखण्ड, अक्षर इत्यादि विशेषण निषेध द्वारा ब्रह्म को जाते हैं।

हे रामजी ! चैतन्य आत्मा सर्वत्र पूर्ण होने से देश-भेद (परिच्छेद) व नित्य होने से कालभेद और सर्वात्मा होने से वस्तु के भेद से रहित अखण्ड है, इसलिये परिछिन्नरूप देह आदि को आत्मा मानना अज्ञानता है। और मन, वाणी का अविषय होने से निर्गुण ब्रह्म को वेद, वेदान्त के वाक्य लक्षणावृत्ति से जनाते हैं, अर्थात् तत्, त्वं के वाच्यार्थ (ईश, जीव) की माया, अविद्या-विरोधी-रूपी उपाधियों को मिथ्या जान दोनों में चैतन्य एक है, ऐसे लक्षणावृत्ति का उपयोग है और विद्वान् ब्रह्म को वृत्ति-व्याप्ति से जानते हैं अर्थात् विचाररूपी वृत्ति आवरण को दूर करती है और ब्रह्म स्वयं-प्रकाश-रूप

से स्फुरण होता है। यही वृत्ति व्याप्ति समझिये।

हे रामजी ! भूमिका-क्रम से भी संशोध होता है। ज्ञान का साधनरूप चिदाभास अथवा चित्त की सात अवस्थाएँ हैं और ब्रह्मज्ञान एक निर्विकार है, इसलिये ज्ञान की सात भूमिका नहीं, किन्तु ज्ञान को उत्पन्न करती हैं। और जीवन्मुक्त के साधन व प्रयोजन आदि भी इन सातों भूमिकाओं के अन्तर्गत हैं।

समदृष्टि।

हे रामजी ! ब्रह्मवेत्ता सब में समदृष्टि रखता है अर्थात् ज्ञानी भेद को मिथ्या समझ चैतन्यात्मा को जगत् भर में समान (पूर्ण) जानता है। कोई कोई समवर्तन को समदृष्टि मानते हैं यह असम्भव और वेद, शास्त्रों की मर्यादाओं का विघातक है, तथा लोकदृष्टि से भी विरुद्ध है। देखिये जल में स्नान किया जाता है अग्नि में नहीं। नेत्रों का काम नाक से नहीं लिया जा सकता तथा मुख व मूल द्वार में तो भेद मानना ही पड़ता है। यदि अपने एक ही देह में समान बरताव करना असम्भव है तो सृष्टि भर के पदार्थों में एकता कैसे हो सकती है।

हे रामजी ! ज्ञानदृष्टि से विद्वान्, विष, अमृत और तृण, ब्रह्माण्ड इत्यादि छोटे बड़े सब पदार्थों को स्वप्न के समान मिथ्या तथा ब्रह्म को सब में पूर्ण जानता है यही समदृष्टि है। इस से ज्ञानी निर्दुःख (आनन्दित) रहता है।

हे रामजी ! कोई देहधारी सम बरताव नहीं कर सकता, मर्यादा पुरुषोत्तम विष्णु आदि भी असुरों व देवताओं तथा सज्जनों व दुर्जनों में भेद मानते हैं, औरों की तो गणना क्या ! इसलिये भेद भ्रान्ति को त्यागकर सबको ब्रह्मरूप निश्चय करना समदृष्टि है। सम बरताव नहीं हो सकता है।

निर्वासनिक

हे रामजी ! संशय, विपर्य्ययरूप वासनाओं को त्याग कर उपशम हुआ अधिकारी आत्मानन्द को प्राप्त होता है। यद्यपि आत्मा मन, वाणी का विषय नहीं, परन्तु सद्गुरु के उपदेश व सद्शास्त्रों की युक्तियों के अभ्यास से आवरण दूर होकर स्वयँ ज्योतिःरूप से आत्मा का बोध होता है।

हे रामजी ! शरीर कुष्ठ से गल जाये तो रसायन के बिना और उपचार लाभप्रद नहीं होता, तैसे गर्वरूप गर्मी के दोष से मनुष्य पतित होता है जब निष्काम सन्तों की युक्तिरूपी रसायन मिले तो शान्ति प्राप्त हो।

अहंता, ममतारूप दो जिह्वाओंवाला मनरूप सर्प जब डसता है तो अति व्यथा होती है, उसका विष ज्ञान-रूप गारुड़ी मन्त्र से शीघ्र उतर जाता है। इसलिये सब वासनाओं को त्याग कर निर्वासनिक होने में कल्याण है।

नकेल से बाँधा हुआ पशु हो तो उसको इच्छानुसार

चला सकते हैं, ऐसे ही मनरूप पशु को निर्वासनिकता-रूपी नकेल से बाँध कर परमार्थ-मार्ग में ले जा सकते हैं।

हे रामजी! वेदान्त का सिद्धान्त यह है कि मन से जगत् की उत्पत्ति व मन से ही स्थिति होती है, इसलिये मन के शान्त होने से ही कैवल्य पद की प्राप्ति होती है, अतः तुम मन को उपशम करो।

॥ इति उपशम प्रकरण (५) ॥

निर्वाण प्रकरण (६)

अफुर।

हे रामजी! संसार की ओर वासनारूप मन का फुरणा बन्ध है और आत्मज्ञान से अफुर होना मुक्ति है। जिसको निर्वाण पद पाने की इच्छा हो वह अहंकाररूप वाह्य फुरणे को त्याग कर अद्वैत ब्रह्म में स्थित होवे, वह स्थिति अफुर ब्रह्म के अनुभव करने से प्राप्त होती है।

शुद्ध चैतन्य आत्मा में मिथ्यारूप आदि फुरणा वही ब्रह्म हुआ। उसने संकल्प से विश्व रचा जो फुरणा-रूप ब्रह्मा ही संकल्पमात्र है तो उस करके रचा संसार सत्य कैसे हो।

यद्यपि माया अनादि, अनन्त और अपार प्रतीत होती है पर तम के सदृश कुछ वस्तु नहीं। जबलग ज्ञान-रूप सूर्य उदय न हो तब तक सत्य के समान भासती है।

आत्मा को अद्वैत रूप निश्चय करने से जगत्-विस्तार का असत्य निश्चय होता है।

हे रामजी ! जगत् के पदार्थ यद्यपि व्यवहार दशा में चिरकाल के स्थाई जान पड़ते हैं तो भी स्वप्न के समान मिथ्या हैं और आत्मा सदा निर्विकार, अफुर है, उसमें प्रपंच का भासना बालकों की रचना सदृश है। जैसे बालक मिट्टी की सेना बनाता है तैसे ब्रह्माजी ने सङ्कल्प से संसार को रचा। यह जगत् वाह्य दृष्टि से कुछ माना भी जाये पर विचार से सबका अत्यन्ताभाव होता है। ऐसा निश्चय कर लेने से अद्वैत निर्वाण पद की प्राप्ति होती है।

हे रामजी ! एक चैतन्यरूप ज्ञान है, दूसरा वृत्ति ज्ञान; एकरस रहनेवाला चैतन्यरूप ज्ञान है और वृत्ति ज्ञान क्षणिक विकारी है; इसलिये वाह्य फुरणारूप वृत्ति को असत्य जान कर अफुर (निर्वाण) पद में तुम स्थित होवो तब शेष पाने योग्य कुछ न रहेगा।

जगत् का सार देह, देह का सार इन्द्रियाँ, उनका सार प्राण और प्राणों का सार मन, इसका सार बुद्धि, बुद्धि का सार अहंकार, इसका सार जीव है, जीव का सार चिदावली, वह चिदावली ईश्वर है। चिदावली का सार चैतन्य है अर्थात् आदि जगत् से लेकर चिदावली तक नाम, रूप सब फुरणे मात्र हैं एक अफुर ब्रह्म सबका अधिष्ठान (असली रूप) है।

चिदावली जब चैतन्योन्मुखत्व (वाह्य फुरती) है तब अनेक विस्तार भासते हैं पर अफुर स्वरूप में स्थित हुए केवल चिद्सत्ता शेष रहती है। उसमें मन, वाणी की गम्य नहीं।

हे रामजी! माया, प्रधान, प्रकृति, अहंकार, फुरणा इत्यादि शब्द, अर्थ सब भ्रमरूप हैं; जैसे, सूर्य में श्यामता तीनों कालों में नहीं तैसे ब्रह्म में फुरणा व जगत् दोनों का अत्यंताभाव है। ब्रह्म सदा निर्विकार है उसमें बन्ध, मुक्ति सब कल्पित हैं, इसलिये तुम निर्वाणस्वरूप में स्थित होवो।

विज्ञान।

हे रामजी! विज्ञान से जब अबोध (अज्ञान) दूर होता है तब सांसारिक वासनाएँ नष्ट होकर आनन्दस्वरूप की प्राप्ति होती है, वह पद-देश, काल, वस्तु के परिच्छेद (भेद) से रहित है। रज्जु के अज्ञान से जैसे सर्प भासता है तैसे ब्रह्म चैतन्य के अबोध से जगत् भ्रम होता है।

ब्रह्म चैतन्य सदा निर्विकार और अद्वैत है तथा माया, अविद्या, प्रकृति, अहंकार और मन इत्यादि भेद कल्पना अज्ञान तक हैं अर्थात् शिव, शक्ति से लेकर स्वर्ग, पाताल, मृत्यु लोक सब ही असत्य हैं।

हे रामजी! जब तक अविद्या निवृत्त नहीं होती तब लग ही मैं मेरी का भ्रम रहता है, विज्ञान के हुए वास्तविक

आत्मा शुद्ध भासेगा अर्थात् एक चैतन्य की सत्य भावना करने से दृश्य को मिथ्या जानकर जब अद्वैत ब्रह्म का निश्चय हो जावे तो भेद कल्पना सब शान्त होजाती है।

जब पर्य्यंत अज्ञान दूर नहीं होता तब तक जगत् सत्य भासता है, विज्ञान होने से अविद्या नष्ट होकर अद्वैत पद में स्थिति होती है। इसलिये विद्वानों को सांसारिक रचना असत्य निश्चय होकर अद्वैत, शान्त-पद को प्राप्ति होती है।

हे रामजी! देह व आत्मा का कुछ भी सम्बन्ध नहीं। शरीर असत्य, जड़, दुःखरूप और आत्मा सत्य, चैतन्य, आनन्दस्वरूप है, समान लक्षणोंवाले पदार्थों का एकत्त्व (संग) हो सकता है, इसलिये चैतन्य आत्मा सदा असंग, अद्वैत है, इस निश्चय की दृढ़ता को विज्ञान कहते हैं।

सुख, दुःख व बन्ध, मोक्ष आदि असत्य हैं पर जब तक शरीर आदि में अहंता होती है तबलग जन्म, मरण आदि संसार चक्कर निवृत्त नहीं होता। अज्ञानी मनुष्य पदार्थों को सत्य व सुखरूप जानकर उसमें आसक्ति करके अनेक कष्टों को सहते हुए अन्त में अधोगति पाते हैं। यदि ब्रह्म अभ्यास का अवलम्बन किया जावे तो विज्ञान होकर कैवल्य पद प्राप्त होता है।

अविद्या।

हे रामजी! अविद्या और विद्या दोनों परस्पर

विरोधी हैं। जब विद्या प्राप्त हो तब अविद्या नष्ट हो जाती है और अविद्या रहने तक विद्या की सिद्धि नहीं होती। विद्या नाम बोध का है।

जैसे अन्धे मनुष्यों को सब ओर अँधियारी भासती है तैसे ज्ञानरूप नेत्रों से हीन को चारों ओर अविद्या-रूप तम रहता है, उस काल में ब्रह्म का प्रकाश होना असम्भव है।

अविद्यारूप रात्रि में काम, क्रोध आदि निशाचर विचरते हैं, जब ज्ञानरूप सूर्य उदय होता है तो जाना नहीं जाता। अविद्यारूपी रात्रि व काम आदि उल्लू कहाँ जाते हैं, अर्थात् वेद, शास्त्रों द्वारा ज्ञान के प्राप्त हुए मोहरूप अन्धकार निवृत्त होकर एक शिवपद प्राप्त होता है, जिसमें यह सब है जो सब रूप है वह चैतन्य तत्त्व सर्वात्मा, अविनाशी, स्वयं-प्रकाश है, उसमें जगत् का उदय व अस्त दोनों अविद्या से भासते हैं वास्तव में चिद्घन सत्ता अद्वैत है।

जैसे सोने के छोटे, बड़े आभूषण (गहने) स्वर्णरूप हैं, उनके नाम, रूप सब कल्पित हैं, तैसे सृष्टि का होना व लय तथा बन्ध, मोक्ष आदि विस्तार सब ब्रह्मरूप है अर्थात् जगत् परमार्थ दृष्टि से असत्य है।

हे रामजी! चिन्मात्र सत्ता सदा प्रकाशरूप है, उसी सत्ता को आत्मा, परमात्मा इत्यादि नामों

से वर्णन करते हैं। जब अविद्यारूप भ्रान्ति को त्याग-कर चिद् सत्ता में विश्राम पावोगे तो व्यवहार के होते हुये भी सब अपना स्वरूप भासेगा।

योग

हे रामजी! स्वरूप में एकत्व (मिलने) को योग कहते हैं। हठयोग और राजयोग भेद से योग दो प्रकार का है— हठयोग प्राणायाम रूप तथा राजयोग ज्ञानात्मिक है।

सांसारिक उन्नति के लिये किया हुआ हठयोग अभ्यास की दृढ़ता, अदृढ़ता द्वारा न्यून, अधिक रूप से अष्ट सिद्धियों को प्राप्त कराता है; वह सिद्धियाँ परमार्थ (मुक्ति होने) में विघ्न करती हैं।

निष्कामता पूर्वक किया हुआ हठयोग हृदय की शुद्धि द्वारा परम्परा से और राजयोग साक्षात् कैवल्य पद को प्राप्त कराता है।

इन दोनों के साधन भिन्न भिन्न हैं अर्थात् पाँच प्रकार का यम और पाँच ही रीति का नियम इत्यादि साधन हठयोग के हैं। असमर्थता, अधीरता व आयु की अल्पता इत्यादि कारणों से यह साधन अति कठिन हैं, और राजयोग के विवेक आदि चार साधन हैं यह भी करने कठिन हैं, अर्थात् दोनों प्रकार के योग की सिद्धि अभ्यास की दृढ़ता से होती है।

हठयोग के सिद्ध हुए अन्तःकरण आदि सब

समाज ईश्वर में लय होता है और राजयोग के प्राप्त हुए अन्तःकरण आदि सब जगत् का बाध होकर निर्गुण ब्रह्म में निष्ठा (स्थिति) होती है।

हे रामजी! सतयुग आदि पहले तीनों युगों में प्राणायाम सम्भव था, उस काल में तपोबल से वर व शाप सिद्ध होते थे और कलियुग में अल्प आयु आदि कारणों से मेरी सम्मति में हठयोग की अपेक्षा से राजयोग करना सुगम है, और प्राप्तव्य में भी विशेषता है।

हे राघव! तुम राजयोगरूप ज्ञान की धारणा करके शुभ आचरणों को करते हुए अहंकार को त्याग यथा प्रारब्ध चेष्टा करो। जगत् का सब विस्तार स्वप्न के समान मिथ्या है, इसलिये राजयोगी सब चेष्टाओं को करते हुए भी सदा असंग रहते हैं अर्थात् वह अपनी दृष्टि में कुछ नहीं करते।

जब तक मनुष्य अविद्यारूपी निद्रा में है, तब तक स्वप्न के समान अनेक प्रकार का भ्रम देखता है, अर्थात् नीच व ऊँच योनियों को पाकर घटमाला के समान संसाररूप कुँएँ में पड़ा हुआ अज्ञानी दुःखों को सहन करता है। हे रामजी! तुम राजयोग की धारणा से अभयपद को प्राप्त होवो।

मुक्ति।

हे रामजी! किसी काल व स्थान में मुक्ति नहीं

किन्तु ब्रह्मज्ञान की दृढ़ता को वेदान्त में मुक्ति लिखा है, अर्थात् चैतन्य ब्रह्म मैं हूँ इस ज्ञान से जन्म, मरण आदि दुःखों का अभाव यही मुक्ति है।

सद्‌शास्त्रों की युक्तियों के द्वारा विचार करने से हृदय की अज्ञानतारूप ग्रन्थी टूट जाती है, उसके नष्ट हुए शेष पाने व त्यागने योग्य कुछ नहीं रहता, इसको मुक्ति समझिये।

कोई भी चेष्टा व पदार्थ स्वतः सुख, दुःख और बन्ध, मोक्ष का कारण नहीं, यह मन के भावों पर निर्भर है, अतः ब्रह्मज्ञान के द्वारा विपर्य्य वासनाओं का दूर करना मुक्ति है।

हे रामजी! जब तक संसार का सद्भाव हृदय में दृढ़ है, तब तक बन्ध है और सत्य असत्य के विवेक से जगत् को मिथ्या जानने से तथा देह में अहंता को त्याग करके ब्रह्म का दृढ़ ज्ञान होना मुक्तिप्रद है।

आत्मा अद्वैत व सदा मुक्त है। इस ज्ञान से संशय व विपरीत भावना के अभाव हुए ब्रह्मस्वरूप में निष्ठा ही जीवन्मुक्त पद है।

हे रामजी! जीवरूपी यन्त्री प्राण (वायु) रूप सूत्र के द्वारा देहरूप यन्त्र से सब क्रिया कराता है, पर शुद्ध आत्मा सब शब्द, अर्थों से अतीत सदा मुक्त है।

दलदल का स्पर्श यद्यपि कोमल और ठंडा भासता

है, परन्तु इस में फँसकर निकलना कठिन है, तैसे भोग पदार्थ रमणीय भासते हैं पर आसक्ति द्वारा अधोगति को प्राप्त कराते हैं।

जो सत्य पदार्थ है वह नाश नहीं होता और जो असत्य है उसका भाव (होना) नहीं। आत्मा सत्य व जगत् असत्य है ऐसा दृढ़ निश्चय मुक्तिपद है।

हे रामजी! जगत् के नाम, रूप और सब व्यवहार कल्पित हैं, तथा आत्मा सदा निर्विकार परमानन्द अद्वैत है, इस निश्चय के प्रभाव से विद्वान् चेष्टा करता भी सदा मुक्त है। ऐसी धारणा करके तुम राज के व्यवहार करते भी असंग रहोगे।

एकता।

हे रामजी! एक आश्चर्य देखो! देह तथा चित्त भिन्न भिन्न हैं और इन्द्रियाँ भी अलग अलग अपने अपने विषयों को ग्रहण करती हैं, पर जीव ऐसा मूर्ख है सबको मिलाकर उनमें अहंकार करके बन्धन में पड़ता है, अतः सबको भिन्न भिन्न जानकर आत्मसत्ता में एकता होनी आनन्ददायक है।

जैसे स्वप्न की चेष्टाएँ निद्रा-काल में सत्य भासती हैं पर जागने से उनका अभाव हो जाता है, तैसे यह जगत् अज्ञान से भासता है और बोध होने पर सबकी एकता होती है।

वायु के वेग से समुद्र में अनेक तरंग भासते हैं, वास्तव में सबका अत्यंताभाव है, तैसे ब्रह्मज्ञान से जगत्

T

असत्य होता है। आत्मा अकृत्रिम व निर्विकार है और माया व उसका कार्य प्रपंच विकारी, जड़ है, दोनों की एकता जानना बन्ध है।

जैसे स्वर्ण के भूषण धातुरूप से एक हैं अर्थात् कंठा, तोड़ा इत्यादि नाम, रूप सुनार के कल्पे हैं, सराफ़ की दृष्टि से एक स्वर्ण है।

हे रामजी! शीशमहल में अनेक पदार्थ दर्पण के संयोग से भासते हैं, पर दर्पण से भिन्न उनको सत्यता नहीं, तैसे आत्मारूप आदर्श में संसार का विस्तार कल्पित (असत्य) है अर्थात् ज्ञानदृष्टि से सब एक आत्मा है।

जैसे दुराचारिणी स्त्री खोटी भावना से भटकती है, तैसे ही मानसी वृत्ति मिथ्या सुख की इच्छा से व्यर्थ भ्रमती है।

हे रामजी! सिद्ध अपने तपोबल से अनेक पदार्थों को रचता है, उसके रचे हुए पदार्थ सत्य भासते हैं, पर संकल्प के शान्त हुए उन सबका अभाव हो जाता है, तैसे यह जगत् असत्य है।

जैसे भारी, शीतल, सफ़ेद यह बर्फ़ के रूप हैं भेद नहीं, तैसे सत्य, चैतन्य, आनन्द इत्यादि सब विशेषण (संज्ञा) अद्वैत ब्रह्म की हैं।

आत्मा।

हे राघव! मनोराज्य में जैसे मनुष्य अनेक व्यवहारों

T

को कल्पता है, तैसे यह जगत् भी मन का संकल्प है, इसका प्रकाशक साक्षी (आत्मा) सदा अद्वैत है।

हे रामजी ! आत्मा, निर्विकल्प, अद्वैत, निरंजन (माया से रहित) और सबका प्रकाशक सदा मुक्त है, पर अज्ञानता से विकारी भासता है। स्वप्न में आत्मा के अज्ञान से अनेक प्रकार के पदार्थ प्रतीत होकर सुख, दुःख का कारण होते हैं, तैसे यह जगत् भी अज्ञान से सत्य भासता है। जब मुमुक्षु संतों के उपदेश व सद्शास्त्रों के अभ्यास से आत्मा को निश्चय करता है तो सब व्यवहारों का अभाव हुए ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

जैसे गृह में अन्धकार होते हुए कोई व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता, तैसे आत्मरूप ज्योति के बिना जगत् की कोई भी क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती।

हे रामजी ! समुद्र में अनेक तरंग जैसे वायु के वेग से उदय, अस्त होती हैं, तैसे आत्मारूप सागर में नाम-रूप और व्यवहार अज्ञानता से भासते हैं, पर आत्मा सदा निर्विकार, अद्वैत-स्वरूप है।

जैसे मठ में अनहुआ बैताल मूर्खों को भय व कष्ट को प्राप्त कराता है, तैसे अज्ञानी मनुष्यों को मन सदा दुःख देता है। जब आत्मा का प्रकाश (ज्ञान) हो तो जन्म मरण के भय और कष्ट सब निवृत्त हो जावें।

हे रामजी ! जब तक मूल होती है तबलग वृक्ष

फैलता है, जड़ के काटने से सूख कर गिर पड़ता है, तैसे संसार-वृक्ष अज्ञानरूप मूल के आश्रित है, उसके अभाव हुए संसार का पता नहीं चलता। इसी प्रकार जब तुमको आत्मा का बोध हुआ तब जगत् का अभाव निश्चय होगा।

हे रामजी! सत्य आत्मा का जो अभ्यास करता है वह आत्मा को प्राप्त होता है, पर संसार में आसक्त रहने से अनेक जन्मों तक दुःख भोगने पड़ते हैं। वास्तव-दृष्टि से देखें तो कोई क्रिया बन्ध, मुक्ति का कारण नहीं, जैसी भावना दृढ़ होती है वैसी गति मनुष्य पाता है। आत्मा की सत्य-भावना करने से मुक्ति मिलती और अहंता, ममता से बन्ध होता है।

बहुत मनुष्य सुख, दुःख के यथार्थ स्वरूप को न जान कर अधिक प्रवृत्ति से अन्त में कष्ट पाते हैं। सब आनन्द की सीमा आत्मा है उसको भूल कर जो संसार में सुखी हुआ चाहे वह सुखी न होगा, उसका परिश्रम करना व्यर्थ है।

हे रामजी! चैतन्य सब देवों का देव है, इसको प्राणीमात्र में पूर्ण जानकर सर्वत्र प्रेम रखना आनन्द का कारण है।

स्मरण।

हे रामजी! फुरणे करके पहले एक जीव हुआ

और ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सब रूप उसी ने धरे हैं। पश्चात् स्वरूप के अज्ञान व कर्म-वासना के वेग से सब संसार-रचना हुई, फिर जब जीवों ने राजस, तामस अनेक कर्म किये तब मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि अनेक योनियाँ हुई हैं।

मनुष्य-शरीर को पाकर जब आदि स्वरूप का स्मरण (निश्चय) हो तब वही पद प्राप्त होता है।

सब प्राणी ईश्वर का अंग (स्वरूप) हैं, पर बिना विचार किये अपने को कर्त्ता, भोक्ता समझ कर मनुष्य जन्म, मरणरूप संसार-चक्र में भ्रमता है। जब पूर्व-स्वरूप को स्मरण करे तब परमपद प्राप्त होवे।

हे रामजी ! वृक्ष का रस जैसे मूल, पींड़ और फूल, फल आदि रूपों को धारता है तैसे ही वासनारूप रस से मनुष्य अनेक रूपों को धार कर दुःख सहता है। आत्मा सदा निर्विकार आनन्दरूप है, ऐसी स्मृति होना मुक्तिप्रद है।

देह, इन्द्रियाँ व चित्त और अविद्या आदि वास्तव में कुछ हुए नहीं। जैसे स्वप्न में स्वरूप के अज्ञान और वासना के वेग से मनुष्य सुख, दुःखों को भोगता है, जब नींद से जागे तब अपना निर्विकार स्वरूप भासे, तैसे वास्तव-स्वरूप को स्मरण करके निर्विकार ब्रह्म में विश्राम होता है।

हे रामजी ! अनहुआ संसार भ्रान्ति कर सत्य भासता है। जो पदार्थ दोनों कारणों से बनता है वह कुछ माना भी जाय, पर उपादान व निमित्त कारणों के बिना जो भासता है वह असत्य है। आत्मा अद्वैत और अच्युत है उसमें दोनों प्रकार की कारणता नहीं हो सकती। जैसे महाराजा स्वप्न में अपने को भिखारी देखे वह केवल भ्रम है, तैसे ही इस जगत् को भ्रान्तिरूप जानो।

हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रिपुटियां अविद्या से भासती हैं और वेदान्त की युक्ति द्वारा जब ब्रह्मस्वरूप का स्मरण (निश्चय) हो, तो परमानन्द स्वरूप में स्थिति होती है।

जैसे कण्ठ के आभूषण को भूलकर मनुष्य उसकी प्राप्ति के लिये सब ओर ढूँढ़ता है, पर जब उसकी याद आती है तब परिश्रम व शोक नहीं रहते, इसी प्रकार जब तुम अपने पूर्व स्वरूप को जानोगे तो कोई भी दुःख स्पर्श न कर सकेगा।

सत्संग।

हे रामजी ! निष्काम विद्वानों की संगति और वेदान्तार्थ के अभ्यास करने से सांसारिक सब दुःख नाश होकर परमानन्द स्वरूप की प्राप्ति होती है और जितने साधन हैं वह परम्परा से मुक्ति को प्राप्त करते हैं, पर ब्रह्मवेत्ता की संगति व उपदेश शीघ्र परमपद को प्राप्त कराते हैं।

सांसारिक वासनाओं को त्याग कर सन्तों की संगति से मूल सहित सब दुःखों का नाश होकर परमानन्द स्वरूप की प्राप्ति होती है।

हे तात! भेद भावना को छोड़कर सत्संग के द्वारा अद्वैत स्वरूप का अभ्यास करना योग्य है। बन्ध का कारण अज्ञान है, इससे मनुष्य अहंकारी हुआ सत्संग से वंचित रहकर जगत् में भटकता है। मनुष्य-शरीर केवल मुक्ति के लिये है और सुख दुःख तो चौरासी लक्ष योनियों में भी हैं, इनके लिये मनुष्य-आयु को व्यर्थ बिताना अज्ञानता है।

हे रामजी! अज्ञानी मनुष्य-देह के आश्रित आत्मा को मानकर इसके सुख, दुःख आदि में अपने को विकारी जानता हुआ संसार में भटकता है। भेदवादी, विषयी, अज्ञानी मनुष्यों के संग को त्यागकर वेदान्तार्थ का अभ्यास परमपद को प्राप्त कराता है, इसलिये तुम समय का विभाग करके सदा अभ्यास में तत्पर रहो।

अद्वैत।

हे रामजी! आत्मा शुद्ध, निर्विकार सदा अद्वैत (एक) है, उसको सद्शास्त्रों की युक्तियों द्वारा मनन करने से जब ज्ञान की दृढ़ता होती है तब विद्वान् व्यवहारों को करता हुआ भी सदा असंग रहता है।

ब्रह्म अद्वैत है, यह अर्थ सब वेद, वेदान्त का सार

है और ज्ञान, अज्ञान तथा बन्ध, मोक्ष आदि भेद आरोप दशा में है वास्तव नहीं।

हे राघव ! आकाश तीन हैं। व्यापक निराकार को आकाश कहते हैं—वह भूताकाश, चित्ताकाश, चिदाकाश तीन हैं। पहले के दोनों आकाश सत्य नहीं पर चिदाकाश सत्य व अद्वैत है।

अज्ञान से उदय हुआ संसार अनर्थों को प्राप्त करता है, इसके त्याग किये से सर्वत्यागी होता है। जब निष्काम सन्तों व सद्शास्त्रों की युक्तियों द्वारा अभ्यास किया जाय तो अद्वैत पद में स्थिति होती है।

हे रामजी ! निष्काम कर्मों और जप, तप आदि साधनों के करने से हृदय की शुद्धि होती है, पर अद्वैत-पद की प्राप्ति निरन्तर विचार करने से हो सकती है, इसलिये और सब उपायों को त्यागकर जब तुम जीव, ब्रह्म के अभेद का चिन्तन करोगे तो अद्वैत स्वरूप में निष्ठा (स्थिति) होकर कैवल्य-भाव की प्राप्ति होगी।

सर्वत्याग।

हे रामजी ! शरीर में अभिमान का त्याग करने से सर्वत्यागी और प्रारब्धवश जो क्रिया प्राप्त हो उसको करते हुए अपने को कर्त्ता न जानने से महाकर्त्ता तथा सुख, दुःख आदि को भोगते हुए अपने को अभोक्ता जानने से विद्वान् महाभोक्ता कहलाता है।

सर्वत्यागी व महाकर्त्ता और महाभोक्ता तीनों भाव ज्ञानी के होते हैं, इनके होने से राज्य व भिक्षा आदि सब व्यवहारों को सम जानकर जीवन्मुक्त होता है।

हे भगवन्! जीवन्मुक्तों (विद्वानों) को और किन लक्षणों से जान सकते हैं?

हे रामजी! ज्ञान स्वसंवेद्य है अर्थात् संशय, विपर्य्यय की निवृत्ति और स्वरूप में स्थिति को विद्वान् स्वयं जानता है और अधिकारी पुण्य-प्रभाव से उनमें श्रद्धा आदि करते हैं।

हे राघव! जगत् तीनों कालों में असत्य है, भेद जो भासता है वह व्यावहारिक है, ज्ञान दशा में नहीं; इसलिये व्यवहार व परमार्थ को मिलाना न चाहिये। जो परमार्थ में भेद जानते हैं वह अज्ञानी हैं, पर व्यवहार में अभेदता माननेवाले अज्ञानियों के अधिपति हैं।

बोध होने पर संसार की प्रतीति दूर नहीं होती, जैसे बिल्लौर के सफ़ेद गिलास में जब तक रंग भरा रहता है तबलग रंगीन भासता है, पर हृदय से उस गिलास में लाली के अभाव को और सफ़ेदी को ज्ञाता मनुष्य ठीक जानता है, तैसे प्रारब्धरूप निमित्त से प्रतीत होनेवाले पदार्थों का नाश नहीं होता किन्तु सद्युक्तियों के द्वारा इनका अत्यन्ताभाव निश्चय होता है,

इस अनुभव के प्रभाव से ज्ञानी सर्वत्यागी व असंग होता है।

हे रामजी! तुम भी इसी दृष्टि का आसरा लेकर राज्य में स्थित हुए यज्ञ, युद्ध आदि व्यवहारों को करते भी सर्वत्यागी व महाकर्त्ता और महाभोक्ता बनोगे।

सुदृष्टि

हे राघव! सूर्य के प्रकाश को जैसे उल्लू देख नहीं सकता, तैसे ही स्वयं प्रकाश (चैतन्य) को अज्ञानी जान नहीं सकता, जब विचार के द्वारा श्रेष्ठ दृष्टि हो तब आत्मा को जान सके।

जैसे घट के नष्ट हुए घटाकाश का नाश मूर्ख मानते हैं तैसे देह आदि के नष्ट होने से देही (आत्मा) का नाश अज्ञानी जानते हैं। आत्मा अजर, अमर सदा प्रकाशस्वरूप है, जब तक ज्ञप्ति (सुदृष्टि) उदय न हो तब तक सूक्ष्म आत्मा का प्रकाश नहीं होता।

हे रघुकुल-भूषण! सरोवर के किनारेवाले मन्दिर व वृक्ष आदि जल में प्रतिबिंबित होते हैं, उन आभासों के प्रतीत होते हुए भी जल में विकार व भेद नहीं होता, तैसे प्रारब्धवश प्रतीत होते हुए आकारों व व्यवहारों से आत्मा में भेद और विकार नहीं होते, अतः जगत् की प्रतीति असत्य है।

जैसे कुसवारी गृह बनाकर उसी में फँस मरती है

तैसे देहाभिमानी मनुष्य आसक्ति करके बँधता है। जब आत्मदृष्टि प्राप्त हो तो व्यवहारों के होते हुए भी असंगता रहती है।

जैसे मनुष्य नशे से उन्मत्त हुआ गोद में स्थित बालक को और स्थानों में ढूँढ़ता है तैसे अज्ञान से बावला हुआ मनुष्य नित्य प्राप्त आनन्द को सांसारिक पदार्थों में पाने का प्रयत्न व्यर्थ करता है। जब ब्रह्म-अभ्यास से दृष्टि शुद्ध हो, तो परमानन्द अपना स्वरूप जान पड़ेगा अर्थात् अनात्म पदार्थों में आनन्द की भ्रान्ति दूर करके परमानन्द-स्वरूप अपने को जानकर तुम तृप्त होवोगे।

अज्ञानी।

हे रामजी! षट्शास्त्रों के जाननेवाला भी हो यदि वह ब्रह्मज्ञान से रहित है तो बालक समझो, अज्ञानतावश उसे बहुत कष्ट सहन करने पड़ेंगे। मूर्खता करके सांसारिक पदार्थ सुखदाई भासते हैं, पर उन में सुख नहीं, यानी देह दुःखों की खानि है व भोग सब रोगरूप हैं और सम्पत्ति महा आपत्ति को प्राप्त कराती है। इनमें आसक्त हुए अज्ञानी मनुष्य घटयन्त्र के समान संसाररूप कुयें में भ्रमते-भ्रमते अति कष्ट पाते हैं।

जैसे चिन्तामणि को त्याग काँच को ग्रहण करके जो उन्नति चाहते हैं वह मूर्ख हैं, ऐसी भूल करने से दीन

दरिद्री रहना पड़ेगा, तैसे ही सांसारिक सुख (भोग) विष के समान अति संताप का कारण है, अर्थात् द्रव्य, कुटुम्ब, भूमि इत्यादि पदार्थ सब बाँधनेवाले हैं इनमें आसक्त हुए अज्ञानी सदा दुःखी रहते हैं।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण, यह तीनों शरीर विकारी व जड़रूप हैं, इनमें उलझकर आत्मानन्द से वंचित हुए रागवान मनुष्य सदा भटकते हैं उनको मनुष्य-देह का प्राप्त होना व्यर्थ है, जीना उनका सफल है जो आसक्ति को त्याग कर परोपकार व परमार्थ को साधते हैं।

मनुष्यों का स्वरूप चैतन्य है, देह आदि नहीं। यह मिथ्या हैं, इनको सत्य, सुखदाई मानकर जीव इनमें लिप्त हुआ सदैव दुःख पाता है, पर जिनको बोध प्राप्त होता है वह सबको अनर्थरूप जानकर आत्मानन्द में लवलीन रहते हैं, तैसे तुम संसार से प्रीति को त्यागकर अपने कर्त्तव्य में सावधान रहो।

धारणा

हे रामजी ! ज्ञानवानों की अन्तरीय धारणा को अज्ञानी नहीं जान सकता, अपनी निष्ठा को ज्ञानी स्वयं जानता है और करुणा, मैत्री, मुदिता इत्यादि परसंवेद्य लक्षण साधुओं के हैं, पर ब्रह्मज्ञान स्वसंवेद्य है। वेदान्त आदि शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि ज्ञानी प्रारब्ध के अनुसार आचार्य, संन्यासी, राजा, समाधि-निष्ठ, तपस्वी

और अनाचारी भी होते हैं, पर अन्तरीय धारणा और विदेह मुक्ति अन्त में सब विद्वानों की समान होती है। जैसे प्रकाश अन्धकार को दूर करता है, पर क्रिया में उसका कुछ उपयोग नहीं, तैसे ज्ञान केवल अज्ञान को निवृत्त करता है, व्यवहार सबके प्रारब्ध के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं, और जो निवृत्तिवाले विद्वान् हैं वह विक्षेप (दुःखों) से बचते और शरणागतों का कल्याण करते हैं, अतः वही प्रशंसनीय हैं।

हे रामजी! ज्ञानी की दृष्टि में सब व्यवहार असत्य हैं, इसलिये वह उनमें संग नहीं मानते, किन्तु अपने को अकर्त्ता, अभोक्ता जानते हैं, यह धारणा मुक्तिप्रद है। यद्यपि इष्ट, अनिष्ट के संयोग व वियोग होने से सुखी, दुःखी ज्ञानी भी दीखते हैं पर वह अपनी दृष्टि में असंग हैं।

व्यवहारों को यदि ज्ञान के अनुसार मानें तो सब विद्वानों के व्यवहार एकजैसे होने चाहिये पर यह असम्भव है, अर्थात् ज्ञान को विस्मरण कराकर सुख, दुःख आदि का अनुभव प्रारब्ध 'कराती है, जैसे रोगी जानता हुआ भी कुपथ्य कर लेता है।

देखिये! वेदव्यासजी का शुकदेवजी के पीछे विलाप करना इत्यादि अनेक प्रसंग शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं।

हे रामजी! अब जिज्ञासुओं की धारणा सुनो। वह सांसारिक सुखों को त्यागकर सदा अभ्यास करते हैं

T

अर्थात् भूमिकाओं के क्रम द्वारा उत्तम धारणा को प्राप्त होते हैं। अब प्रसंगवश भूमिका-क्रम कहता हूँ। सातों भूमिकाएँ शब्दों के अर्थों से ठीक-ठीक जानी जा सकती हैं अर्थात् शुभ (मोक्ष) की इच्छा (शुभेच्छा)–१ सद्विचार करना (सुविचारना), २ मनोवृत्तियों को अल्प करना (तनु मानसा), ३ सत्वभाव की प्राप्ति (सत्वापत्ति), ४ आसक्ति का त्याग (असंसक्ति), ५ पदार्थों की अभावना (पदार्थभावनी), ६ तुरीय पद की प्राप्ति (तुरीयगा), ७ इन सातों भूमिकाओं के द्वारा जब ज्ञान प्राप्त होता है, तब वह प्रारब्ध अनुसार व्यवहारों को करता भी जीवन्मुक्त होता है। तुम भी भूमिकाओं के अभ्यास से वही धारणा करके राज्य-पालन आदि को करते हुए राजा जनक के समान असंग रहोगे।

सृष्टियाँ।

हे रामजी! अब सृष्टियों का वृत्तान्त सुनो, इनके जानने से कोई संशय न रहेगा। वह सृष्टियाँ असंख्य हैं, अर्थात् हर एक मनुष्य की अपनी अपनी सृष्टि भिन्न भिन्न होती हैं।

जैसे एक गृह में सोये हुए दश मनुष्यों की स्वप्न सृष्टियाँ भिन्न भिन्न होती हैं तैसे यह भी जानो, इसलिये वेदान्त में "दृष्टिरेव सृष्टि" इस सिद्धान्त को उत्तम माना है, अर्थात् दृष्टि (मनोवृत्ति) ही सृष्टिरूप होती है, मन

सबके भिन्न भिन्न हैं, इसलिये सृष्टियाँ भी अलग-अलग अनंत हैं।

मैंने लोकालोक पर्वत पर एक स्वर्ण की शिला में योग धारणा से असंख्य सृष्टियाँ देखीं, उन सब में ब्रह्मा और उसके रचे हुए ब्रह्माण्ड, समुद्र, आकाश और काल आदि की सब मर्यादाओं सहित सृष्टियों को प्रत्यक्ष देखा, पर जब मैंने ज्ञानदृष्टि की तो एक ब्रह्म जान पड़ा और अन्तवाहिक (सूक्ष्म धारणा) से अनंत सृष्टियाँ भिन्न भिन्न आकार व व्यवहारों सहित भासीं, फिर जब नेत्रों को खोल कर देखा, तो एक वही शिला स्वर्ण की भास आई, अर्थात् ज्ञान, अन्तवाहिक, स्थूल, इन तीनों दृष्टियों से जाने हुए अर्थों में बहुत विलक्षणता थी, इन तीनों दृष्टियों को वेदान्त में पारमार्थिक, प्रतिभासिक, व्यावहारिक सत्तारूप लिखा है। इन सत्ताओं के विभाग कर लेने से वेद, शास्त्र आदि के सब वाक्यों की निर्दोष व्यवस्था हो सकती है और तीनों सत्ताओं का विभाग किये बिना सब शास्त्रों और पुराण आदि में अनेक संशय व विपरीत भाव होते हैं।

सृष्टि के सब क्रम को पूर्ण रीति से जाननेवाला निष्काम तथा ब्रह्म के वेत्ता को सर्वज्ञ कहते हैं, उनके रचे शास्त्र, पुराण आदि वेद के समान सत्य हैं। ऐसा विश्वास होने पर प्रमाणगत संशय दूर करके मनुष्य ब्रह्मज्ञान

को पा सकता है। अतः सृष्टियों का क्रम सब ठीक है।

असंगता

हे रामजी! आत्मा अति सूक्ष्म व निर्विकार सदा असंग है, मन के फुरणे से अनेक प्रकार के पदार्थ भासते हैं, पर ज्ञानदृष्टि से जगत् सत्य नहीं। सबका अधिष्ठान चिद्घन आत्मा असंग और अक्रिय है, विद्वान् यह जानते हैं कि देह आदि अनात्म पदार्थ मेरे से भिन्न दृश्यरूप हैं, मैं सबके जाननेवाला (साक्षी) सदा असंग हूँ।

हे रामजी! अधिकारियों को मन आदि के प्रबोधार्थ विवेक, वैराग्य आदि साधन करने उचित हैं, इनसे आत्मा की असंगता का यथार्थ ज्ञान होता है, तब वैदिक, लौकिक व्यवहारों को मन आदि का धर्म जानकर ब्रह्म की असंगता निश्चय करके कृतार्थता होती है। उस दशा में विद्वान् विश्व का विध्वंस (नाश) करे अथवा लाखों यज्ञों को करे, वह सदा निर्लेप (असंग) है, अर्थात् ज्ञानी को कोई क्रिया जन्म आदि का कारण नहीं होती, इसलिये तुम देहाभिमान को त्याग इच्छा अनुसार व्यवहारों को करते हुए भी सदा असंग रहोगे।

नाम, रूप और व्यवहार सब असत्य हैं और चिदात्मा सदा अकर्त्ता, अभोगता है, इस अनुभव सहित ज्ञानी को नित्य-मुक्त जानो।

हे रामजी! विचाररूप मित्र जिसके हृदय में

T

आता है उसके संशय, विपर्य्यय सब नष्ट होते हैं, तथा संसार का व्यवहार कोई भी बन्धन नहीं कर सकता और सब कर्म ज्ञानाग्नि से दग्ध होते हैं।

सन्तजनों का संग व सद्शास्त्रों की युक्ति से जब ज्ञान दृढ़ होता है तब पूर्ण असंगता होकर निर्वाणपद की प्राप्ति होती है। इसलिये तुम भी उन उपायों के द्वारा विज्ञानी होकर यथा प्रारब्ध यज्ञ, युद्ध आदि व्यवहारों को करते भी सदा असंग होवोगे।

कल्पित।

हे रामजी ! रज्जु में सर्प की भ्रान्ति को कल्पितरूप लिखा है; जैसे कल्पित सर्प रस्सी की हानि, लाभ नहीं कर सकता, तैसे ही कल्पित (मिथ्या) जगत् के व्यवहार व आकार अधिष्ठान ब्रह्म की हानि व लाभ नहीं करते।

जैसे नेत्रों के दोष से शुद्ध आकाश में मोतियों की माला भासती है, तैसे अज्ञानता से ब्रह्म में जगत् की प्रतीति मिथ्या होती है, पर अविद्यक संसार भासता भी सत्य नहीं।

इन्द्रजाली के रचे हुए पदार्थ प्रत्यक्ष भासते हैं, पर वह यथार्थ में मिथ्या हैं, इसलिये उनके आकार व व्यवहार सब कल्पित हैं; तैसे ही इस सृष्टि को मिथ्या जानो, बल्कि जो असत्य होता है वही भ्रान्ति दशा में प्रत्यक्ष भासता है, और सत्य पदार्थ नहीं भासता।

जैसे सीपी में जब चाँदी प्रतीत होती है तब शुक्ति नहीं भासती, पर जब सीपी जानी तो चाँदी का अभाव होता है, तैसे जगत् भ्रम से भासता है, अधिष्ठान ब्रह्म के ज्ञान से इसका अत्यंताभाव निश्चय होता है।

सांसारिक सब पदार्थों के प्रतीत होते हुए भी विद्वान् अधिष्ठान आत्मा को सत्य जानता है। जैसे नवका में स्थित मनुष्यों को किनारे के पदार्थ चलते हुए भासते हैं तैसे इस सृष्टि को भ्रमरूप जानो। जैसे मायावी राक्षस माया करके अनेक पदार्थों को रचता है, वह सब आकार व व्यवहार सत्य के समान भासते हैं, तैसे मायावी मन ने सृष्टि को कल्पा है, पर वास्तविक दृष्टि से सब असत्य है।

हे रामजी! जगत् की प्रतीति विक्षेप से होती है विक्षेप पूर्वले संस्कारों को कहते हैं। यह सब मन का संवेग है। संवेग तीन प्रकार का होता है—मृदु संवेग से मनोराज्य, मध्य संवेग से स्वप्न सृष्टि और तीव्र संवेग से जाग्रत व परलोक आदि सृष्टि होती है; परन्तु सब में सार चिदात्मा, अद्वैत, निर्विकार है उसमें सृष्टि कल्पित है। यह सब वेद व वेदान्त शास्त्र का सार मैंने कह सुनाया, इसको मनन करके तुम कृतार्थ होवोगे।

॥ इति पूर्वार्द्ध निर्वाण प्रकरण (६) ॥

निर्वाण प्रकरण उत्तरार्द्ध

वास्तविक।

हे रामजी ! अविद्या रचित जगत् तीनों कालों में सत्य नहीं, पर जो भ्रान्ति के विषय निरोपाधिक पदार्थ हों अधिष्ठान के ज्ञान होने से उनकी प्रतीति का भी अभाव होता है जैसे रज्जु के ज्ञान होने पर कल्पित सर्प की प्रतीति नहीं रहती।

प्रसंग से प्राप्त जाग्रत रूप जगत् में अन्तःकरण आदि उपाधि विद्यमान हैं, उनका सर्वथा अभाव नहीं होता, किन्तु मिथ्यत्व निश्चय होता है, जैसे आकाश की नीलता के तोड़ने की आवश्यकता व योग्यता नहीं किन्तु नीलता का अभाव निश्चय होता है। इसलिये व्यवहारों के प्रतीत होते भी इनको असत्य जान लेने से सत्य एक ब्रह्म निश्चय होता है।

हे रामजी ! भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालों सहित जगत् के प्रतीत होते भी आत्मा को अद्वैत जानना चाहिये। अज्ञानी मनुष्यों को चिरकाल से जगत् का अभ्यास दृढ़ हो रहा है, इसलिये संसार उनको सत्य भासता है, पर वास्तव दृष्टि से कोई भी पदार्थ सत्य नहीं, यह सब मन का विलास (फुरणा) है, ऐसा निश्चय करके तुम अद्वैत ब्रह्म में स्थित होवो। तब तुम्हें जाग्रत में सुषुप्ति होगी।

अच्युतपद

हे रामजी ! जिसमें कभी कोई विकार न हो सके, वह अच्युत पद कहलाता है और द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि

त्रिपुटि रूप जगत् सब असत्य है इसमें सार चैतन्यात्मा है, वह सदा अपने भाव में स्थित है। जैसे काष्ठ के स्तंभ में शिलपी पुतलियाँ बनाने को कल्पता है कि इतनी पुतलियाँ इस में बन सकेंगी वह सब शिलपी के मन में हैं, स्तंभ में नहीं, तैसे चैतन्य के आश्रित सब रचना होती हैं पर आत्मा सदा अच्युत (निर्विकार) है।

जब महाप्रलय होता है तब हरि व हर और ब्रह्मा आदि सब मुक्त होते हैं उस काल में एक ब्रह्म रहता है, फिर कल्पित रूप फुरणे से सृष्टि की रचना होती है, वह फुरणा अज्ञान दशा तक है। जैसे बालक जब स्वयं भ्रमता है अर्थात् चाईंमाईं खेलता है तब उसको स्थिर रूप पदार्थ सब भ्रमते भासते हैं, तैसे भ्रम, भ्रान्त मनुष्यों में रहता है।

हे रामजी! यह जगत् भी भ्रान्ति से भासता है, ज्ञान हुये सब का अभाव निश्चय होता है, तब मनुष्य सब बन्धनों से मुक्त होता है। इसलिये तुम विवेक द्वारा जगत् को कल्पित जानकर अच्युत पद में स्थित होवो।

जब दृढ़ अभ्यास किया जाता है तब ब्रह्मज्ञान होता है और सृष्टि का कोई पदार्थ सत्य नहीं भासता। जैसे मणि का चमत्कार मणि से भिन्न नहीं होता तैसे ब्रह्म का विवर्त (चमत्कार) ब्रह्म रूप है। जैसे जल व तरंगों में भेद नहीं, ऐसे ही चैतन्यात्मा से जगत् की सत्ता अलग नहीं, भासता हुआ भी असत्य है। यद्यपि स्वप्न में प्रतीत हुआ ब्रह्माण्ड उस काल

में सत्य भासता है, जागने पर कुछ नहीं रहता। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति, परलोक आदि, सब अपने २ काल में सत्य भासते हैं पर दूसरी अवस्था के होने से नहीं रहते, तैसे ब्रह्म ज्ञान के होने पर जगत् असत्य भासेगा, परन्तु विदेह-मुक्ति होने तक इसको प्रतीति का अभाव नहीं हो सकता, क्योंकि यह सोपाधिक भ्रम है। इसलिये तुम संसार के भासते हुए भी स्वरूप को निर्विकार समझो।

देवार्चन

हे राघव! वासना रूप मैल से जिसका हृदय मलिन होता है, उसको प्रकाशमय देव का दर्शन (ज्ञान) नहीं होता।

अपने आश्रम पर आये हुए शंकर जी से मैंने पूछा कि मुख्य देव और उसके अर्चन का प्रकार कहिये।

अनुग्रहपूर्वक जो कुछ उन्होंने देव का स्वरूप और अर्चन का प्रकार कहा था वह मैं तुम्हारे को स्पष्ट कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनों।

शंकर बोले, हे ब्राह्मण! श्री विष्णु व ब्रह्मा जी और मैं इत्यादि मुख्य देव नहीं। जैसे समुद्र में अनेक तरंग भासते हैं, तैसे हम सरीखे मुख्य देव से फुरे हैं। वह एक ज्योतिमय चैतन्य देव है उसकी अल्प सी प्रभा सब ब्रह्माण्ड को प्रकाश करती है। बहुत क्या कहूँ, यदि कोटि सूर्य एक संग प्रज्वलित हों तो भी उसकी अपेक्षा से वह अल्प हैं, उस चैतन्य देव को अज्ञानी शून्य रूप जानते हैं।

जैसे प्रकाश के बिना कोई क्रिया सिद्ध नहीं हो सकती तैसे चैतन्य देव के बिना संसार शून्य है।

हे द्विजवर ! शम, समता, बोध इत्यादि पुष्पों से उस देव का सदा अर्चन होता है। वासना को त्यागना शम, सब में सम दृष्टि रखना समता, और ब्रह्म का अपरोक्ष निश्चय, बोध है, इनसे पारमार्थिक देव की पूजा होती है, उसकी पूजा के लिये बाह्य सामग्री की आवश्यकता नहीं।

हे ब्राह्मण ! स्वयं ज्योति, सर्वत्र व्यापक, अनादि (अकृत्रिम) देव को त्याग कर जो साकार की पूजा करते हैं, वह कैवल्य पद को प्राप्त नहीं हो सकते।

हे द्विजोत्तम ! सदा निर्विकार, चैतन्य देव का पूजन ज्ञान से होता है, वह देव शब्द, अर्थों से अतीत (परे) है, उस आनन्दमय ज्योति के बिना प्राणियों का जीना भी असम्भव है।

सब प्राणी व्यवहार (प्रयत्न) आनन्द-प्राप्ति के लिये करते हैं, पूर्व संस्कार के वश क्रियाओं को करते हुए भी उनको चैतन्य रूप जानना यह उस देव की श्रेष्ठ पूजा है।

दृष्टा, दृश्य के संयोग से जो आनन्द होता है, वह उस देव से प्रगट होता है, उसी से सब प्राणी संतुष्ट होते हैं, इसलिये सांसारिक वासनाओं को त्याग अनुभव में स्थित होना उस देव का अर्चन है।

हे ब्राह्मण ! तुम धन्य हो, मुख्य देव का स्वरूप व

पूजन का प्रकार पूछा, उसको अनुभव के अनुसार मैंने सुनाया, इतना कहकर शंकर जी अन्तर्धान हो गये।

प्रबोध

हे रामजी ! संशय, विपर्यय से रहित दृढ़ ज्ञान को प्रबोध कहना चाहिए, यह स्वसंवेद्य है। विद्वान् के व्यवहार ज्ञान के आधीन नहीं, विशेषतया प्रारब्ध के अनुसार सब के व्यवहार होते हैं।

ज्ञानी व अज्ञानी में अन्तरीय (निश्चय) का भेद है यानी प्रबोध होने पर ज्ञानी क्रिया करता व सुख, दुःख आदि को भोगता हुआ भी आत्मा को सदा अकर्त्ता, अभोक्ता जानता है, इसलिए वह मुक्त स्वरूप है। और अज्ञानी विपर्य्य बुद्धि से बँधा हुआ है।

जैसे स्वाँगी अनेक रूपों को धार कर भिन्न २ चेष्टाएँ करता है पर उनको स्वरूप में नहीं मानता तैसे विद्वान् अनेक व्यवहारों को करता भी स्वरूप को नित्य असंग जानता है।

स्वप्न का जगत् यद्यपि स्वप्न काल में सत्य भासता है, प्रबोध होने से उसका अभाव होता है इसी प्रकार अद्वैत स्वरूप को निश्चय करने से बाह्य क्रियाएँ ज्ञान में बाधा नहीं डाल सकतीं, इसलिये प्रबोधवान् मुक्त है।

वर, शाप आदि के आधीन ब्रह्मज्ञान नहीं किन्तु वह वैराग्य, अभ्यास की दृढ़ता से हो सकता है। कोई २ महात्माओं व विद्वानों के दर्शन में ही तोष मान कर उत्तम

भावों से वंचित रहते हैं, सत्संग होने पर भी यदि सत्य पद का निर्णय व निश्चय न किया जावे तो दर्शन सार्थक नहीं होता।

परमार्थ के वाक्यों को सप्रेम मनन करना महात्माओं की मुख्य सेवा है। बाह्य सेवा कुछ मानो भी जाय, वह शास्त्रों के लेख अनुसार होनी चाहिये वरन् दोष रूप होती है, इसलिये लौकिक व पारमार्थिक सब बर्त्ताव विचारपूर्वक ठीक ठीक होने उचित हैं।

हे रामजी ! अविद्या रूप विसूचिका (हैजा) की भारी व्याधि है, इसकी औषधि विज्ञान है, अर्थात् प्रबोध होने से ही अविद्या रूप विसूचिका दूर होती है।

शास्त्र में अवस्था चार वर्णन की हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरया। जो प्रत्यक्ष भास रही है वह जाग्रत, निद्रा दोष से प्रतिभासक सृष्टि, स्वप्न तथा मन के लय होने से सुषुप्ति और इन तीनों अवस्थाओं का साक्षी रूप तुरया पद चतुर्थ अवस्था है। पहली तीनों व्यवहार की और सन्त की चतुर्थ तुरया अवस्था परमार्थ की साधक है। इस प्रकार प्रबोध होने से जीवन्मुक्त पद की प्राप्ति होती है।

शिव तत्व

हे रामजी ! कल्याण स्वरूप को ही शिव तत्व कहते हैं। जब तक जगत् की सत्यता दृढ़ हो रही है तब लग उसका जानना कठिन है। जैसे स्वप्न जागे बिना दूर नहीं होता तैसे चैतन्य तत्व के निश्चय किये बिना संसार का अभाव नहीं होता

यदि क़िले में कोई महाराजा स्थित हो और उसका नियम हो कि द्वारपाल की आज्ञा बिना उसका दर्शन कोई न करे और द्वारपाल को प्रतिज्ञा हो कि जब तक राजा की झाँकी नहीं करले तब लग मेरी प्रसन्नता होनी असम्भव है, ऐसी दशा में सादर दोनों की प्रसन्नता का उपाय करने से ही अर्थ सिद्ध हो सकता है, इसी प्रकार वैराग्य से मन रूप द्वारपाल को वश में कर अभ्यास से ब्रह्मरूप महाराजा के दर्शन मुमुक्षु कर सकता है। इसलिये तुम भी मनोनाश व तत्व ज्ञान का अभ्यास एक संग करते हुए ब्रह्म के बोध द्वारा शिव-तत्व को पाकर कृतार्थ होवो।

मेरा आशीर्वाद है कि उस शिव-तत्व का तुम्हें ज्ञान आदि के द्वारा सदा दर्शन होता रहेगा।

सूर्य्य की किरणें जैसे मरु भूमि में जल रूप हो भासती हैं परन्तु सूर्य की प्रभा से भिन्न जल नहीं, ऐसे ही प्रकाश स्वरूप शिव-तत्व से भिन्न जगत् सत्य नहीं।

जैसे दृष्टि के दोष से आकाश में फूल भासते हैं तैसे अज्ञानता से चैतन्य तत्व में अनेक विकार प्रतीत होते हैं।

हे रामजी! जगत् के मिथ्या निश्चय करने पर शेष एक शिव-तत्व रहता है, ऐसे ही कर्तृत्व, भोक्तृत्व विपर्यय के दूर हुए बन्धनों से मुक्त हो विद्वान् परमपद में विश्राम पाता है।

जैसे समुद्र में वायु के वेग से तरंग व चक्कर आदि होते हैं पर उनकी सत्ता जल से भिन्न नहीं, ऐसे सब

शब्द, अर्थों से रहित केवल शिवपद स्थित है। उसके यथार्थ बोध होने पर शेष कर्तव्य नहीं रहता।

ब्रह्माजी, श्रीविष्णु, सदाशिव इत्यादि सब का अधिष्ठान वही शिव-तत्व है, अभ्यास के द्वारा उस पद को पाकर तुम कृतकृत्य होवोगे।

सिद्धान्त।

हे रामजी! वेदान्त का जो सारार्थ है उसको सिद्धान्त कहना चाहिए। उसके बोधार्थ जीवन्मुक्तों (विद्वानों) की उच्च दृष्टि को प्रतिपादन करना आवश्यक समझकर उसे कहता हूँ।

प्रारब्ध के अनुसार देह उपयोगी व्यवहार करते हुए भी विद्वान् अपने को सदा मुक्त स्वरूप जानते हैं, अर्थात् सिद्धान्तार्थ को निश्चय करके पतित प्रवाह व्यवहारों को करते हुए भी वह जीवन्मुक्त हैं।

जैसे घटाकाश वास्तव दृष्टि से महाकाश से भिन्न नहीं होता तैसे जीव ब्रह्मरूप है, ऐसी निष्ठा (स्थिति) वाला विद्वान् सदा असंग हुआ गुणातीत पद को प्राप्त होता है।

अमोघ बाण, तीक्ष्ण तलवार बल्कि वज्र के पड़ने पर जीवन्मुक्त (ज्ञानी) स्वरूप निश्चय से कभी चलायमान नहीं होता अर्थात् ब्रह्म ज्ञान के दृढ़ हुए पुनः उसका अभाव (नाश) नहीं होता। यद्यपि वज्र आदि के प्रहार से देह व मन आदि व्यथित होते हैं, पर जीवन्मुक्त देह व मन नहीं, उसका

स्वरूप अद्वैत चैतन्य है, इसलिये उसके स्वरूप में बाधा नहीं होती, यानी वह अपने निश्चय से नहीं गिरता और उस के कैवल्य भाव की प्राप्ति में भी कुछ विघ्न नहीं होता।

यद्यपि वाह्य दृष्टि से जगत् का क्रम कुछ माना भी जाय पर सिद्धान्त काल में सब का अत्यंताभाव है, अर्थात् जीव, ईश्वर आदि का भेद व्यवहार में कुछ हो, पर वास्तव से नहीं, और जितने आकार व बर्ताव भासते हैं ज्ञान-दृष्टि से सबका अत्यंताभाव है। यह वेद, वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है।

जैसे मृत्तिका के छोटे, बड़े बासन सब मृत्तिका रूप हैं उनके नाम, रूप और व्यवहार कल्पित हैं, तैसे सिद्धान्त की (परमार्थ) दृष्टि से जगत् के सब पदार्थ ब्रह्मरूप हैं।

रसास्वाद के वश हुए (भोगों में आसक्त से) जो प्रमादी होते हैं वह संसार सागर में बह जाते हैं। सम्वित्त (चैतन्य) का जब दृढ़ अभ्यास किया जाय तो भेद कल्पना से रहित हुआ विद्वान् कमल-पत्र के समान सदा निर्लेप रहता है।

जो विदित वेद (विद्वान्) हैं वह प्रतिदिन उच्च धारणा में स्थित होते हैं तैसे तुम भी इसी सिद्धान्त में आरूढ़ होकर जीवन्मुक्त बनो।

परब्रह्म

हे रामजी ! ब्रह्म समुद्र में आनन्दरूप जल पूर्ण है, वह आसक्त मनवालों को खारी और जिज्ञासुओं को सद्-

T

गुरु की युक्तियों के अभ्यास करने से मधुर भासता है, जो आत्मपद से गिरे हैं उनके लिए वाह्य भोग प्रिय भासते हैं, पशुभोग तो भोगते हैं पर दोषी नहीं होते और अज्ञानी मनुष्य अनुचित रीति से बर्ताव करने पर पापों की अधिकता वश अधोगति को प्राप्त होकर विशेष दुःखों को सहन करते हैं।

मुमुक्षुओं का यह कर्तव्य है कि सर्वदा मन की वृत्तियों और प्रवृत्तियों का साक्षी (ज्ञाता) होकर उनको सुधारने का सदा प्रयत्न करें और परब्रह्म के बोध को पाकर कैवल्य भाव को प्राप्त होवें।

हे रामजी ! जगत ब्रह्म का विवर्त (आभास) है। जैसे बिजली का चमत्कार उससे भिन्न नहीं होता तैसे जगत् के आकार व व्यवहार सब परब्रह्म रूप हैं, उनमें भेद जो भासता है वह कल्पित है वास्तविक नहीं। इसलिये तुम ब्रह्म को अद्वैत जानो।

परब्रह्म—मन, वाणी का विषय नहीं, अतः विद्वान् विचार रूपी वृत्ति से आवरण को दूर करके ब्रह्म चैतन्य को स्वयं प्रकाश रूप से निश्चय करते हैं और वेद आदि की वाक्य विरोधी उपाधियों व अर्थों को छुटवा कर एक लक्ष्य स्वरूप को निश्चय कराते हैं। इस प्रकार ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है।

ज्ञानवानों को सब जगत् असत्य अथवा ब्रह्मरूप भासता है, अद्वैत ब्रह्म और सर्व ब्रह्म इन दोनों पदों का

भाव एक ही है, अर्थात् प्रपंच के बाध द्वारा ब्रह्म एक है व जगत् वास्तविक दृष्टि से ब्रह्म रूप है। यानी निषेध मुख्य व विधि मुख्य से विश्व परब्रह्म स्वरूप है। यह सब वेद, वेदान्त का सार (सिद्धान्त) है।

हे रामजी! अस्ति, नास्ति दोनों पक्षों से रहित केवल अशब्द पद को निश्चय करके सब बन्धन टूट जाते हैं।

परब्रह्म सदा निर्विकार, अखण्ड, निर्विकल्प, अनंत ज्योतिर्मय सबका अपना स्वरूप है, उसको निश्चय कर लेने से मनुष्य को केवल ब्रह्म भाव की प्राप्ति होती है।

माया आदि उपाधियों से रहित ब्रह्म शुद्ध, निर्गुण, स्वरूप है, उसमें कोई विकार व द्वंद्व नहीं, सदा ज्योतिमय सर्वात्मा है।

सजाति, विजाति, स्वगत् भेदों से रहित सर्वत्र व्यापक और षट् ऊरमियों से अतीत परब्रह्म है, उसको निश्चय करके तुम अभय पद को प्राप्त होवो।

आनन्द

हे रामजी! सबका वास्तविक स्वरूप आनन्द है पर बिना विचारे स्त्री, पुत्र आदि पदार्थों में आनन्द प्रतीत होता है, इसलिये अज्ञानी उन्हीं में सदा आसक्त रहते हैं।

देखिये! छोटे, बड़े व मूर्ख, चतुर सब कालों में निजानन्द की इच्छा और उसकी प्राप्ति के लिये अनेक प्रयत्न करते, कराते हैं।

T

स्त्री, पुत्र और कुटुम्बी जब अपनी इच्छा के प्रतिकूल (ख़िलाफ़) होते हैं, तो वह भी दुःखदाई भासते हैं, यदि इनसे आनन्द होता तो सदा बना रहता। इससे स्पष्ट हुआ, आत्मा ही आनन्द स्वरूप है, पर भूल से पदार्थों में सुख प्रतीत होता है। जैसे कस्तूरी वाला मृग बनस्पति को सूँघता २ वृथा कष्ट पाता है तैसे ही अनजान मनुष्य बाह्य विषय आदि में आनन्द जानकर उनके लिये यत्न करते हैं और वियोग काल में दुःखी होते हैं तथा पापों के वश बहुत समय तक पिलते हैं। यदि आनन्द अपना रूप जान लिया जावे तो सर्वथा उन्नति और परमानन्द प्राप्त हों।

कोई २ मुक्ति दशा को शून्य व निरानन्द मानते हैं वह यथार्थ तत्त्व को नहीं जानते। जैसे अनजान मनुष्य चिन्तामणि को काच मानकर अवनति पाता है तैसे विचार रहित मनुष्य मुक्ति का निरादर करके जन्म २ में बहुत कष्टों को पाता है।

सर्व वेदों का सार वेदान्त शास्त्र है, उसमें सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति मुक्ति का स्वरूप लिखा है। सब जीव उस आनन्द के लवलेश के लिये सदा प्रयत्न करते हैं। सर्व आनन्द की सीमा चिदानन्द ही विद्वानों का स्वरूप है। अतः ज्ञानी मुक्त हुए निरावर्ण आनन्द सागर में एकता पाते हैं, मुक्ति के आनन्द से वंचित रहने वाले मनुष्य को हत भाग्य समझिये।

हे रामजी! आत्म विचार के बिना प्राणी का कभी

कल्याण नहीं होता, इसलिए तुम सदा ब्रह्म अभ्यास में तत्पर होवो तब सर्वानन्द प्राप्त होंगे।

संसार मृगतृष्णा की मिथ्या नदी है इसमें मनरूप मृग सदा दौड़ता दौड़ता संतप्त होता है, इसलिए जीव को बाह्य वासनाओं से विशेष आपत्तियाँ भोगनी पड़ती हैं। जिसको आनन्द की इच्छा हो उसको सदा आत्म अभ्यास करना उचित है। जितने इन्द्रियों के विषय हैं वह अनर्थ रूप हैं, इनमें प्रीति अज्ञानी करते हैं, भोगों में बंधा हुआ मनुष्य छूट नहीं सकता।

हे रामजी ! अपना (आत्मा) अद्वैत, अनन्त, निर्विकार, अति सूक्ष्म है, उसके बोध होने से सब क्लेश दूर होकर परमानन्द की प्राप्ति होती है। जो मनकी राजस, तामस वृत्तियों को ज्ञानाग्नि से जराता है, वह शुद्ध सात्विकी आनन्द को प्राप्त होता है। ज्ञान को ढकनेवाली विक्षेप (वृत्तियाँ) हैं, अतः मुमुक्षुओं को चाहिये, संसार में आशक्ति त्याग करके आत्म अभ्यास में सदा लवलीन रहें। समाहित चित्त वाला मनुष्य व्यवहार करता भी आनन्द का अवलम्बन रखता है, अर्थात् जिधर जिधर मन जाता है उन सबके साक्षी (आत्मा) को असंग जानकर सदा आनन्दित रहता है। जैसे दर्पण के मन्दिर में सब ओर अपना स्वरूप दीखता है तैसे उनको सर्वत्र आनन्द का ही भाव होता है। इसी प्रकार सबके भीतर, बाहिर चिदानन्द को जानते हुए तुम भी कृतार्थ होवो।

कृतार्थ।

हे रामजी! जब मनुष्य करने योग्य व प्राप्त होने योग्य सबको सिद्ध कर चुकता है, तभी कृतार्थ होता है। अधिकारी सब भोगों की इच्छा का त्याग कर उच्च पद में विश्राम पाता है, इसलिए जहाँ जहाँ मन आसक्त हो वहाँ से विचार द्वारा उत्थान कर स्वरूप में लगा कर कृतार्थ होवो। संतोषी मनुष्य को वासनाएँ व्यथित नहीं कर सकतीं, वह दुःख रूप संसार सागर को गोपद के समान लाँघ जाता है, अतः कृत कृत्य हुआ बिराजता है।

हे रामजी! संसार रूप समुद्र में मोह रूप भँवर है और तृष्णा रूप तरंग हैं। उसमें अज्ञान रूप जल भरा है, वहाँ इन्द्रियरूप ग्राह से बचने के लिये सावधानता की आवश्यकता है। जो सद् शास्त्र के अभ्यास और सद्गुरु के उपदेश रूप जहाज़ को पाकर उसपर आरूढ़ (स्थित) हैं, वह दुःख सागर को सहज में तर कर कृतार्थ होते हैं।

हे रामजी! ज्ञानवान् का अहंकार ऐसा है जैसे अग्नि की मूर्त्ति होती है, सो देखने मात्र है। वह अहंकार अनर्थ नहीं करता केवल व्यवहार का साधक है। भेद से रहित मैं ब्रह्म हूँ, जिसको ऐसा ज्ञान दृढ़ होता है उसकी सदा समाधि जानों, वह सब चेष्टाएँ करता भी कृत कृत्य है।

विद्वान् का यह शरीर अन्त का होता है उनका फिर जन्म नहीं होता, चाहे वह विस्मृति हुए अथवा हा हा

करते भी प्राणों को त्यागे तो भी मुक्त होता है, ज्ञानी पतित प्रवाह (यथा प्रारब्ध) व्यवहारों को करता और सुख, दुःख को भोगता हुआ आत्मा को अकरता, अभोक्ता निश्चय करके सदा असंग रहता है उसको कृतार्थ कहना चाहिये।

सब विश्व का आधार सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म को निश्चय करके जीवन्मुक्त पद को पाकर ज्ञानी प्रशंसा के योग्य और कृतार्थ होता है। इसी भाँति, हे राघव तुम भी अशेष दुःखों की निवृत्ति के लिए सदा आत्म रामी बनो, तब स्वरूप में विश्राम पाकर निशंक हो राज्य व्यवहारों को करते हुए भी कृत कृत्य होवोगे।

निर्विकल्प।

हे रामजी! जो जीवन्मुक्त हैं वह प्रारब्ध वश देह यात्रा के लिए चेष्टा करते हैं और सब दशाओं में असंग रहते हैं, उनकी स्थिति निर्विकल्प गिनी जाती है, अर्थात् भेद व संशय आदि से रहित जो दृढ़ बोध है उसको निर्विकल्प जानों, ऐसी धारणा करके विद्वान् कैवल्य पद को प्राप्त होता है यानी निर्विकल्प स्वरूप को अनुभव करने से सब विपर्य्यय दूर होकर कृतार्थ होता है।

हे रामजी! जिसमें सब है और जिसका सब प्रपंच भासता है वह ज्ञान शक्ति रूप आत्मा सबके भीतर, बाहिर निर्विकार व अद्वैत रूप स्थित है, उसमें भेद व विकार कदाचित नहीं, उसी को निर्विकल्प पद जानों।

T

हे रामजी ! द्रष्टा, दर्शन, दृश्य रूप जगत् को वासना सहित त्याग करके त्रिपुटि को सिद्ध करनेवाले साक्षी (आत्मा) का संशय, विपर्य्य से रहित जो दृढ़ बोध है, वह निर्विकल्प ज्ञान है इसको प्राप्त होकर शेष पाने योग्य कुछ नहीं रहता ।

दुस्तर मन व इन्द्रियों को वैराग्य रूप शस्त्र से काट और अभ्यास द्वारा ज्ञानाग्नि से जलाकर ब्रह्मवेत्ता आनन्द सागर में लवलीन होता है ।

हे राघव ! शुद्ध चैतन्य का जब ज्ञान दृढ़ होता है तब यथाप्राप्त व्यवहार करता हुआ विद्वान् बन्धनों में नहीं फँसता, किंतु असंग हुआ निर्विकल्प स्वरूप में स्थित होता है । इसलिए अधिकारियों को उचित है कि निष्काम हुए सदा ब्रह्म को निश्चय करें तब सब दशाओं में असंग होकर निर्भय पद में विश्राम पावेंगे ।

जो विदित वेद महात्मा हैं उनकी उत्तम धारणा को सभ्य मनुष्य सराहते हैं इसलिए तुम भी भेद, संशय को त्यागकर अद्वैत, अच्युत ब्रह्म में स्थित हुए निर्विकल्प पद में विश्राम पावो ।

निर्वाणता ।

हे रामजी ! फुरणे से रहित जो शान्त पद है उसमें विश्राम होने को निर्वाणता कहते हैं, वह पद सदा अन्तर्मुखता (उच्च धारणा) से प्राप्त होता है ।

मन व वाणी का अविषय हुआ भी निर्वाणपद दूर नहीं और न उसको कोई ढक ही सकता है किंतु नित्य प्रकाश स्वरूप, सर्वत्र पूर्ण सदा अपरोक्ष है पर संसारी मनुष्यों को दूर से दूर और अज्ञात (आवरण सहित) भासता है।

सृष्टि को स्वप्न समान मिथ्या जान कर अनुभव-स्वरूप जो अद्वैत पद है उसमें स्थित होने को शास्त्र निर्वाणता कहते हैं।

हे रामजी ! अहंता, ममता को त्याग सदा अद्वैत व अच्युतपद में दृढ़ धारणा (निष्ठा) करनी शान्ति का कारण है, पर जब तक भेद-दृष्टि होती है तब तक निर्वाणपद प्राप्त नहीं होता।

अच्युतपद में फ़ुरणा तीनों कालों में नहीं और शास्त्रों में जहाँ फ़ुरणे का उल्लेख है, वह मन का धर्म केवल आरोप दशा में है, वास्तव में एक अखण्ड, निर्वाच्यपद सर्वत्र पूर्ण हो रहा है उसमें दृढ़तापूर्वक विश्राम पाना निर्वाणता कहलाती है इसी को निर्विकल्प समाधि भी कहना चाहिये।

सब जगत् का अत्यंताभाव निश्चय कर माया, अविद्या आदि सर्व उपाधियों को दूर करके जो अफ़ुर पद है उसमें वृत्तियों को विश्राम कराकर विद्वान् निर्वाणरूप होता है।

स्वप्न से जागे हुये के समान भ्रान्ति को मूल सहित दूर करके शब्द, अर्थ से अतीत अच्युतपद में हृदय का अन्तर्मुख परिणाम होना, यही निर्वाणपद में स्थिति है।

ज्ञातज्ञेय पुरुष तीनों शरीरों को नहीं स्मरण करता हुआ पतित प्रवाह क्रिया करता है। जैसे सर्प काँचली को त्याग कर अलग स्थित होता है, तैसे उसको किसी पदार्थ में राग व द्वेष नहीं रहता, वह जीवता हुआ भी विदेह माना जाता है। जैसे राजा जनक था, तैसे हे रामजी! तुम भी संशय व भेद-दृष्टि से उत्तीर्ण हुये हो, अतः मुक्ति की सीमा निर्वाणपद में विश्राम पावोगे।

हे भगवान्! आपकी अपार दया से, मैं अज्ञान को दूर कर कृतार्थ हुआ हूँ। सभा में स्थित राजा दशरथ आदि से लेकर सब अपने २ भावों के अनुसार मुनीश्वर वशिष्ठजी को सराहने और गद्गद हो पूजन करने लगे।

नारदजी आदि बहुत ऋषि व मुनि आये थे उन्होंने यह कहा, पहले हम जानते थे, ब्रह्म ज्ञान को पाकर मुक्त हुये हैं पर आपके उपदेश को सुनकर यह निश्चय हुआ है कि बन्ध (संसार) तीनों कालों में नहीं और ब्रह्मात्मा सदा मुक्त है। आप साक्षात् निर्वाणस्वरूप हैं, इसलिये हम लोग आपको कोटिशः धन्यवाद देते हैं। तब सब ओर से पुष्पों की अपार वर्षा होकर सर्वत्र शान्ति प्राप्त भई।

इति निर्वाण प्रकरण (६)

योग वाशिष्ठसार समाप्त हुआ

आगे अष्टावक्र गीता का आरम्भ होता है। शमस्तु

T

ओ३म्

अष्टावक्र गीता

भावार्थ

प्रकरण (१)

हे प्रभो ! ज्ञान की प्राप्ति कैसे होती है और मुक्ति कैसे होगी तथा मनुष्य वैराग्य को कैसे प्राप्त होता है, कृपा-दृष्टि से मुझ शरणागत के प्रति सब अर्थ कहिये।१

हे तात ! यदि तुझको मुक्ति की इच्छा हो, तो सब विषयों को विष के समान त्याग करके क्षमा, सरलता, दया, संतोष, सत्य को अमृत के सदृश धारण करले।२

हे शिष्य ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश यह पाँचों भूत तू नहीं, अतः भौतिक देह भी तू नहीं हो सकता, किन्तु इन सब के साक्षी (आत्मा) को मुक्त होने के लिये तू निश्चय कर।३

यदि देह को भिन्न जान कर तेरी चैतन्य में स्थिति होगी तो अभी सुखी, शान्त हुआ बन्ध से मुक्त होगा।४

तू ब्राह्मण आदि चारों वर्ण व आश्रम नहीं और तू नेत्रों का विषय भी नहीं किन्तु असंग, निर्विकार, विश्व का साक्षी है, इसलिये तू सुखी हो, अर्थात् आत्मा को आनन्द रूप जान।५

धर्म, अधर्म तथा सुख, दुःख आदि मन में होते हैं तुझ पूर्ण आत्मा में नहीं किन्तु अकर्त्ता, अभोक्ता तू नित्य मुक्त है।६

T

हे शिष्य ! तू सब का द्रष्टा एक सदा मुक्त है, तुझे बन्धन यही है जो द्रष्टा को अपने से भिन्न मान रहा है।७

मैं कर्त्ता हूँ, इस अहंकाररूप काले सर्प से तू डसा है, मैं कर्त्ता नहीं; इस निश्चय रूप अमृत को पीकर सुखी हो।८

मैं एक शुद्ध बोध स्वरूप हूँ, इस ज्ञानाग्नि से अज्ञानमय सघन बन को जला कर शोक रहित हुआ तू सुखी हो।९

जिसमें यह जगत् रज्जु के सर्प के सदृश कल्पित भासता है वह परमानन्द रूप तू है, अतः आनन्दित हुआ विचर।१०

यहाँ मुक्ति का अभिमानी मुक्त और अपने को बद्ध जाननेवाला बँधा है। यह कथन सत्य है, जैसी भावना वैसी गति, अर्थात् अन्तरीय (निश्चय) में ही बन्ध व मुक्ति है।११

साक्षी, पूर्ण, एक, मुक्त, चैतन्य, अक्रिय, असंग, निरिच्छित, शान्तात्मा तू है, पर भ्रमवश संसारी की नाईं हुआ है।१२

अभास मैं हूँ इस भ्रम को तथा बाह्यान्तर भाव को त्याग करके निष्क्रिय, बोध, आत्मा (स्वरूप) अद्वैत पद की तू भावना कर।१३

हे तात! देहाभिमानरूप फाँसी कर तू बहुत समय से बँध रहा है, मैं बोध स्वरूप हूँ, इस ज्ञान रूप तलवार से अज्ञानात्मक भ्रम को काट कर तू आनन्दित हो।१४

असंग, क्रिया रहित, स्वयं प्रकाश, माया से परे, तू है, तेरे में बन्ध यही है जो समाधि का कर्त्तव्य अपने में मानता है।१५

हे शिष्य! यह जगत् तुझ आत्मा से ढक रहा है और तेरे ही में विश्व कल्पित है, वास्तविक तू शुद्ध बोध रूप है, अतः चित्त की नीच दशा (अज्ञानता) को दूर कर।१६

निरिच्छित, विकारहीन, सत्य, शीतल हृदय, गम्भीर बुद्धि, क्षोभ से रहित चैतन्य की तू दृढ़ भावना कर।१७

साकार को मिथ्या और निराकार को सत्य जान इस उपदेश को धारण करके फिर तेरा जन्म न होगा।१८

जैसे दर्पन में भासित हुए आकार, उनके अन्तर्बाह्य सो आदर्श होता है, तैसे इस शरीर के बाह्यान्तर परमात्मा व्यापक, अद्वैत विराजमान हो रहा है।१९

सर्वगत एक प्रकाश जैसे घट के भीतर, बाहर स्थित होता है, तैसे सब भूतों में एक रस ब्रह्म (पूर्ण) है।२०

प्रकरण (२)

अहो, मैं मायातीत, निर्विकार, प्रकृति से परे ज्ञानरूप हूँ अब तक मोह (अज्ञान) से मैं वंचित रहा।१

जैसे मैं एक देह का साक्षी हूँ तैसे सब जगत् को मैं प्रकाशता हूँ। अतः संसार मेरे में है व मेरे में कुछ नहीं।२

हर्ष है शरीर सहित विश्व को असत्य जान करके सद्गुरु के उपदेश रूप दक्षता को पाकर परमात्मा को मैंने अपना स्वरूप निश्चय किया है।३

जैसे लहरें फेन, बबूला आदि जल से भिन्न नहीं ऐसे ही आत्मा से उत्पन्न (कल्पित) हुआ विश्व आत्मा से भिन्न नहीं।४

विचार करने पर तन्तुओं से भिन्न जैसे वस्त्र नहीं, ऐसे ही यह जगत् एक आत्म स्वरूप है, भिन्न नहीं।५

जिस प्रकार गाँडे के रस में शर्करा (मिठास) है तैसे मुझ (आत्मा) में संसार है। अतः विश्व मेरे में व्यास है।६

रस्सी के अज्ञान से जैसे सर्प की प्रतीति होती है और रज्जु के ज्ञान होने पर सर्प नहीं भासता, ऐसे ही चिदात्मा के अज्ञान से जगत् प्रतीत होता है, बोध हुए सत्य नहीं भासता।७

प्रकाश मेरा स्वरूप है, भिन्न नहीं, जभी मैं (आत्मा) विश्व का साक्षी हूँ, तभी मैं चैतन्य स्वरूप हूँ।८

जैसे सीपी में रजत व रस्सी में सर्प तथा सूर्य की किरणों में जल भ्रान्ति से प्रतीत होते हैं तैसे ही मेरे में सब रचना कल्पित है, अर्थात् भ्रम कर भासती है।९

जैसे मिट्टी में वासन और जल में तरंग तथा स्वर्ण में भूषण भासते हुए भी, अपने २ कारण से भिन्न वासन, तरंग, भूषण सत्य नहीं, तैसे मुझ (आत्मा) से उत्पन्न हुआ विश्व आत्मा रूप है। कल्पित वस्तु अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती।१०

मेरी मुझको नमस्कार है, क्योंकि ब्रह्माजी से लेकर काष्ठ तक सब के अभाव होने से अधिष्ठान रूप में (आत्मा) का कभी नाश नहीं हो सकता है।११

मुझे मेरी बन्दना है, देह सहित भी मैं एक विश्व के

व्याप्य करके स्थित हूँ, अतः न जाता और न कहीं से आता हूँ।१२

अहो, मुझे नमस्कार है, मेरे समान दूसरा दक्ष नहीं, शरीर को स्पर्श न करके मैं चिरकाल से इस विश्व को धारण करता हुआ भी सदा असंग रहता हूँ।१३

मुझे मेरा नमस्कार है, परमार्थ से मेरे में जगत् नहीं अथवा मन, वाणी का विषय जगत् मेरे में स्थित है।१४

ज्ञान, ज्ञेय तथा ज्ञाता तीनों परमार्थ से नहीं, अज्ञान से जिसमें भासते हैं वह आत्मा शुद्ध (माया रहित) मैं हूँ।१५

अहो, द्वैत दृष्टि ही सब दुःखों का कारण है इसकी निवृत्ति का दूसरा उपाय नहीं किंतु जगत् मिथ्या है और मैं शुद्ध चिदानंद हूँ, इस ज्ञान की दृढ़ता से द्वैत भ्रम दूर होता है।१६

मैं चैतन्य हूँ, और माया आदि उपाधियाँ अज्ञान से भासती हैं, इस विचार द्वारा सदा निर्विकल्प स्वरूप में स्थित हूँ।१७

मुझ में बन्ध, मोक्ष वास्तव से नहीं, ज्ञान को पाकर निर्मूल (मिथ्या) भ्रान्ति की शान्ति हुई है, आश्चर्य यह है कि मेरे में विश्व स्थित है और परमार्थ से तीनों कालों में नहीं।१८

सहित शरीर यह जगत् सत्य नहीं, इस निश्चय से मैं (आत्मा) शुद्ध चैतन्य स्वरूप हूँ, अब भेद कल्पना किसमें हो।१९

शरीर व स्वर्ग नरक, तथा बन्ध मोक्ष और भय, यह मिथ्या हैं, अतः अद्वैत आत्मा में इनका अत्यंताभाव है।२०

T

अहो, मैं द्वैत को नहीं देखता, जनों में स्थित हुआ भी बनवासी हूँ, अतः मैं कल्पित पदार्थों में कैसे प्रीति करूँ।२१

मैं शरीर नहीं तथा मेरा शरीर नहीं, न मैं जीव, चेतन हूँ, मेरे में यही बन्ध है, सदा जीवने की इच्छा करता हूँ अर्थात् आत्मा को जीता, मरता मानता हूँ।२२

अहो, मुझ अपार चैतन्यरूप समुद्र में चित्तरूप पवन के वेग से अनेक (विचित्र) भुवनरूप कलोल उदय होते हैं और वास्तव दृष्टि से मैं एक निर्विकार-स्वरूप हूँ।२३

मुझ अनंत (महा) सागर में चित्तरूप वायु के शांत हुये जीवरूप व्यापारी का जगत्मय जहाज़ नाश होता है।२४

आश्चर्य यह है, मुझ अगाध समुद्र में जीवरूप अनेक तरंग स्वाभाविक (प्राकृतिक) उदय, अस्त होते और परस्पर खेलते हुये अन्त में विलय होते हैं।२५

प्रकरण (३)

हे शिष्य! नित्य, एक, आत्मा को जानकर ब्रह्मज्ञानी धीर (संतुष्ट हुआ) पदार्थों के संग्रह करने में प्रीति कैसे करेगा।१

जैसे सीपी के अज्ञान से चाँदी का भ्रम होकर लोभ होता है तैसे आत्मा के अज्ञान से विषयों में रुचि होती है।२

सागर में तरंगों के सदृश जिसमें जगत् भासता है सो मैं हूँ, ऐसा जान कर दीन के सम ज्ञानी भटकता नहीं।३

शुद्ध चैतन्यरूप सुशोभित आत्मा को श्रवण करता हुआ विज्ञ, प्राप्त हुये पदार्थों में आसक्ति से क्या दीन होता है?४

सब भूत प्राणियों में चैतन्य आत्मा को और आत्मा में सब भूतों को जानता हुआ मननशील विद्वान् उनमें ममत्वपूर्वक व्यवहार करता है यह आश्चर्य है।५

अद्वैत ब्रह्म में निष्ठावाला तथा मुक्तपद में स्थित हुआ ज्ञानी इच्छा सहित (रागपूर्वक) अनेक चेष्टाएँ करता हुआ, क्या लोलुप देखने में आता है? यह विस्मय है।६

जैसे कोई मृत्यु-समय विषयों की आशा करे तो आश्चर्य है, तैसे ज्ञानी कायर हुआ ज्ञान के शत्रु काम की क्या इच्छा करता है ?७

इस लोक व परलोक के भोगों से विरक्त और सत्य, असत्य के विचार सहित विद्वान्, क्या मोक्ष से भय करेगा? यह विस्मय है।८

ज्ञानी भक्तों द्वारा भोगों को भोगता और दुर्जनों से पीड़ित होता भी, स्वात्मा को असंग जान कर हर्ष व क्रोध को स्वरूप में नहीं देखता, यानी विद्वान् को दोनों समान हैं।९

चेष्टा-कर्त्ता भी जो देह को भिन्न जानता है ऐसा ब्रह्मवेत्ता स्तुति, निन्दा में क्षोभ कैसे मान सकता है ?१०

यह विश्व मायामात्र है, ऐसा जानता हुआ, संशय-रहित धीर बुद्धि (ज्ञानी) मृत्यु के उपस्थित हुये कैसे भय करेगा, यानी जन्म, मृत्यु आदि देह के धर्म मानता हुआ वह निर्भय पद को प्राप्त होता है।११

T

जिस महात्मा का मन मोक्ष की इच्छा से रहित हुआ ज्ञान से तृप्त है, उसको किसकी उपमा दे सकते हैं ।१२

स्वाभाविक (बिना परिश्रम) दृश्य का अत्यन्ताभाव जाननेवाला ज्ञानी, त्याग ग्रहण रूप भेद बुद्धि कैसे करेगा।१३

हृदय से निष्पाप, निर्द्वन्द, निरिच्छित, ज्ञानी को दैव-वश प्राप्त हुए भोग सुख, दुःख का कारण नहीं होते ।१४

प्रकरण (४)

हर्ष है, ज्ञानी भोगों कर विकसित हुआ भी संसारी मनुष्यों के समान नहीं होता किन्तु सदा असंग रहता है।१

जिस पद की इच्छा करते हुए इन्द्र आदि देवगण दीनता को प्राप्त होते हैं, अहो उस पद में स्थित राजयोगी (विद्वान्) हर्ष आदि से रहित सदा अकर्त्ता, अभोक्ता मुक्त है।२

जैसे आकाश धूलि से मलिन भासता है पर उसको धूलि स्पर्श नहीं करती तैसे विद्वान् पुण्य, पाप से असंग (मुक्त) है।३

यह संसार-रचना बांध द्वारा असत्यरूप है, जिस महात्मा को ऐसा निश्चय है वह यथेच्छित प्रवृत्त हुआ भी उसके निषेध करने को कौन समर्थ हो सकता है ।४

ब्रह्माजी से लेकर काष्ठ तक सब भूत प्राणियों में ज्ञानी को इच्छा, अनिच्छा पक्ष में कौन रोक सकता है । ५

जो विद्वान् जगदीश्वर (ब्रह्म) को अद्वैतरूप जानता है सो जो कुछ जानता है वह करता है, दूसरे के अभाव होने से उसको कदाचित् भय नहीं होता है ।६

T

प्रकरण (५)

हे तात ! शुद्ध रूप तुझ आत्मा का अनात्मा (दृश्य) से कोई भी सम्बन्ध नहीं, तो तुझे त्यागने की इच्छा कैसे हो, इसलिये देह आदि को मिथ्या जानकर स्वरूप में लय हो।१

सागर में बुदबुदों के समान आत्मा में जगत् उदय, अस्त होता है, ऐसे निश्चयपूर्वक चिदात्मा में अभेद हो।२

रज्जु में भासित सर्प के सदृश तुझ शुद्ध रूप आत्मा में प्रत्यक्ष भासा हुआ जगत् असत्य है, ऐसा जान स्वरूप में लीन हो।३

सुख, दुःख में समान (पूर्ण), आशा, निराशा में सम तथा जन्म, मृत्यु में समदृष्ट हुआ स्वरूप में लय हो।४

प्रकरण (६)

मैं आत्मा आकाश के सम अपार हूँ और घट के समान जगत् मिथ्या है, ऐसे निश्चय करके असत्य पदार्थों में त्याग व ग्रहण के योग्य कुछ नहीं तो भेद कल्पना कैसे रहेगी।१

मैं समुद्र के समान हूँ, तथा जगत् तरंगों के तुल्य मिथ्या है, ऐसा ज्ञान होने से त्याग व ग्रहण के योग्य कुछ नहीं रहता।२

सो मैं सीपी के समान सत्य हूँ और जगत् रजत (चाँदी) के तुल्य मिथ्या है ऐसा निश्चय होने पर त्याग, ग्रहण बुद्धि कहाँ होगी।३

मैं भौतिक संसार में पूर्ण हूँ और जगत् मेरे में कल्पित है, यह जानकर त्याग, ग्रहण व लय आदि कुछ रहते नहीं।४

T

प्रकरण (७)

मुझ अनन्त सागर में संस्काररूप वायु के वेग से विश्वरूप जहाज़ इधर, उधर भ्रमता है, पर निर्विकार मुझ (आत्मा) में क्षोभ कदाचित नहीं होता है ।१

मुझ अपाररूप समुद्र में प्रपंचरूप लहरें स्वाभाविक उदय अस्त होती हैं, उनसे मेरी वृद्धि व हानि कुछ नहीं ।२

मुझ अगाध समुद्र में विश्व केवल कल्पनामात्र है, इसलिये मैं (आत्मा) शान्त (निर्विकार) हूँ ।३

पदार्थों में आत्मा कल्पित नहीं और अनन्तरूप शुद्धात्मा में पदार्थ सत्य नहीं, इसलिये मैं आसक्ति से रहित निरिच्छित हुआ केवल शान्तपद में स्थित हूँ ।४

हर्ष है, मैं चैतन्य स्वरूप हूँ, और जगत् इन्द्रजाल के सम असत्य है, इसलिये मेरी कैसे और किसमें त्याग, ग्रहण की कल्पना होगी, किन्तु मैं ज्योति स्वरूप अद्वैत हूँ ।५

प्रकरण (८)

तब तक बन्ध है जब लग अपने से भिन्न जान कर किसी की इच्छा और किसी का शोक तथा किसी का त्याग व ग्रहण एवम् हर्ष, विषाद इत्यादि विकारों को स्वरूप में मानता है ।१

तब मुक्ति है जब चित्त, इच्छा, शोक व त्याग, ग्रहण आदि बाह्य वासना तथा प्रसन्नता व क्रोध से रहित हो, अर्थात् आत्मा को शुद्ध निर्धर्मक जानने से इन सब का

अत्यन्ताभाव निश्चय होता है। वैसे जीवित दशा तक तत्वज्ञानी भी निष्क्रिय नहीं हो सकता। यदि सर्वथा वृत्तियों का स्वरूप से ही नाश माने, तो विदेह-मुक्ति तत्काल होनी चाहिए, यह असम्भव है।२

तब बन्ध है जब चित्त किसी दृष्टि में आसक्त होता है और तब मुक्त है जब किसी भी दृष्टि में आसक्त नहीं रहता, यानी सब वासनाओं तथा विकारों से अतीत जब आत्म को निश्चय कर लेवे, तब मुक्त स्वरूप है।३

जब चित्त (अहंकार) का अभाव होवे तब मुक्ति है, जब देहाभिमान है, तब बन्ध है। मेरा आशीर्वाद यह है, तुम त्यागी व ग्राहक कुछ भी मत बनो।४

प्रकरण (९)

यह मैंने किया है, यह नहीं किया इत्यादि द्वंद किसी के कभी शान्त नहीं हो सकते, ऐसा निश्चय करके वैराग्य सहित हुआ तू हठ को त्याग दे।१

हे तात! लौकिक व्यवहारों को देखकर किसी भाग्य-शाली मनुष्य को जीवने व भोगों की और जानने की वासनाएँ दूर होती हैं वह आत्मा को अकर्त्ता, अभोक्ता जानता है।२

यह जगत् अनित्य और तीनों तापों से दूषित व असार तथा निन्दित है, अतः त्यागने के योग्य है, ऐसा निश्चय करके विद्वान् शान्त (निर्विकार) स्वरूप में स्थित होता है।३

ऐसा समय व आयु कौन है, जिसमें जीवों को सुख,

दुःख आदि द्वंद नहीं होते, अतः यथा प्राप्त में प्रवृत्त और हृदय से असंग हुआ सिद्धि (ज्ञान) को प्राप्त होता है।४

नाना ऋषियों व महात्माओं तथा योगियों के अनेक मतों को देखकर मुमुक्षु वैराग्य द्वारा शान्त होता है।५

वैराग्य व समदृष्टि सहित ब्रह्मवेत्ता (चैतन्य पुरुष) का और गुरु कौन है यानी मुमुक्षुओं को तारनेवाला वही है।६

भौतिक प्रपंच को केवल भूतों का विकार जानकर उसी समय बन्ध से रहित हुआ तू ब्रह्म स्वरूप में स्थिति पावेगा।७

वासनामात्र संसार है, अतः मिथ्या वासना का अभाव करके पूर्ण आत्मा में स्थिति होती है, यानी लोक व शास्त्र और देह की वासना को त्यागनेवाला ज्ञान को पाता है।८

प्रकरण (१०)

ज्ञान के शत्रु काम को तथा अनर्थमय संकल (बाँधनेवाला) अर्थ (द्रव्य) को और इनके कारण धर्म को भी मिथ्या जानता हुआ तू हृदय से सबका अनादर कर।१

स्वप्न व इन्द्रजाल के सम अल्पकाल तक रहनेवाले मित्र, भूमि, द्रव्य, गृह, पुत्र और स्त्री इत्यादि सब सम्पत्तियों को जानो, इनमें आसक्ति करने से सुख नहीं होता।२

जिस २ पदार्थ में तृष्णा है वह बन्धन है, अतः तीव्र वैराग्य को धारण कर लोभ को त्याग के सुखी हो।३

तृष्णा करना बंध है इसके अभाव हुए मुक्त होता है, अतः जगत् में आसक्ति त्यागने से परम तोष (आनन्द) मिलता है।४

तू एक शुद्ध चैतन्य है और दृश्य असत्य है तथा अविद्या भी मिथ्या है तो तुझे विशेष जानने की इच्छा क्यों हुई है ?५

राज्य, पुत्रों, स्त्रियों तथा शरीरों के सुखों में अनेक जन्मों तक आसक्ति करते हुए भी यह सब नष्ट होते आये हैं।६

द्रव्य तथा काम (सुखों की वासना) से उदासीन हो क्योंकि धर्म अर्थ का हेतु संसार रूप बन में मन को विश्रान्ति (शान्ति) नहीं मिलती, इसलिये अधिक प्रवृत्ति दुःखदाई है।७

अनेक जन्मों में मन, वाणी, शरीर करके कौन २ चेष्टाएँ नहीं की होंगी, उन सबका फल परिश्रम और दुःख प्राप्त हुआ, इसलिए विचार काल में तो इनसे उपराम हो।८

प्रकरण (११)

भाव, अभावरूप विकार पूर्वले संस्कारों से होते हैं यह जान निर्विकार (उद्वेग रहित) हुआ ज्ञानी सुख शांति पाता है।१

सब जगत् ईश्वर रचित है अन्यथा नहीं, ऐसा निश्चय करके हृदय से सब वासनाओं को त्याग कर, संतुष्ट होने पर पदार्थों में विद्वान् की आसक्ति नहीं रहती।२

आपत्ति, सम्पत्तिकाल निश्चय से दैवाधीन होते हैं, यह जानकर विद्वान् तृप्त, स्वच्छ हृदय हुआ, इच्छा शोक नहीं करता।३

सुख, दुःख तथा जन्म, मृत्यु, प्रारब्ध के ही अधीन होते

हैं, ऐसा निश्चय करके विद्वान् अपने से सिद्ध होते नहीं मानता हुआ, सब कुछ करता भी सदा निर्लेप रहता है ।४

सब दुःख चिन्ता (वासना) से होते हैं, ऐसा अनुभव करके उसको त्याग कर सुखी, शान्त हुआ लौकिक वासनाओं को दूर से त्याग कर दे ।५

न मैं देह हूँ, न मेरी देह है, मैं बोधस्वरूप हूँ, ऐसा निश्चय करके कैवल्यपद को प्राप्त हुआ ज्ञानी कृत, अकृत दोनों को मिथ्या, यानी मन का धर्म कल्पित रूप मानता है।६

ब्रह्माजी से लेकर काष्ठ तक मैं पूर्ण हूँ, ऐसा जानकर संशय से रहित शुद्ध व शान्त रूप ज्ञानी, पदार्थों के संयोग-वियोग में सम रहता हुआ सबको असत्य जानता है ।७

विचित्ररूप जगत् वास्तव-दृष्टि से ज्ञानी का स्वरूप है, इसलिये सब विपर्ययों से रहित ब्रह्मवेत्ता संसार को चैतन्य से भिन्न सत्य नहीं जानता हुआ शांति को प्राप्त होता है।८

प्रकरण (१२)

पहले शरीर सहित सब क्रियाओं को, फिर वाणी सहित भाषण को, पुनः मन सहित वासनाओं को मिथ्या जान करके मैं आत्मस्वरूप में स्थित हुआ हूँ ।१

शब्द आदि विषयों में आसक्ति तज कर आत्मा को सूक्ष्म जान, विक्षेप को त्याग, मैं एकाग्र हृदय स्थित हूँ ।२

अध्यास (भ्रान्ति) वश विक्षेप के होने से समाधि की जाती है, यह नियम जानकर साध्य के अभाव हुये मैं

स्वरूप में स्थित हूँ ।३

हे ब्राह्मण! यह त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्य पदार्थ है इस भेद बुद्धि के अभाव हुये, हर्ष, विषाद आदि सबका अभाव होता है, अतः मैंने आत्म स्वरूप में स्थिति पाई है ।४

वर्णाश्रम व उनके धर्मों को चित्त में धार कर विक्षेप होता है, ऐसा निश्चय करके मेरी ब्रह्म स्वरूप में स्थिति हुई है ।५

जैसे कर्मों का अनुष्ठान तैसे कर्मों का त्याग, यह दोनों अज्ञान से होते हैं अर्थात् आत्मा को कर्त्ता, भोक्ता मानना ही विपर्यय है, ऐसा जानकर मेरी आत्मा (स्वरूप) में स्थिति हुई है ।६

ब्रह्म अचिंत्य (बुद्धि आदि का विषय नहीं) इसलिये लक्षणावृत्ति से उसका ध्यान व ज्ञान होता है, अतः ध्येय आदि त्रिपुटि को मिथ्या जानकर मैंने अलक्ष्य, अद्वैत स्वरूप में स्थिति पाई है ।७

ऊपर कहे हुये साधनों के द्वारा मुमुक्षु कृतार्थ होता है, पर जो स्वतःकृत्यकृत्य रूप है, उस ज्ञानी का कहना ही क्या।८

प्रकरण (१३)

कौपीन आदि अल्प २ पदार्थों में भी सत्यता, आसक्त हुये अद्वैतात्मा में स्थिति पाना कठिन है, अतः त्याज्य, ग्राह्य इस भेद दृष्टि को छोड़कर, मैं सुख स्वरूप में स्थित हुआ हूँ।१

किसी व्यवहार में शरीर को, किसी में जिह्वा को,

किसी में मन को, परिश्रम (कष्ट) होता है, अतः प्रवृत्ति को मूल (अज्ञान) सहित त्याग करके, मैं आत्म स्वरूप में स्थित हुआ हूँ।२

अपना किया कुछ सिद्ध नहीं होता, यह जानकर जिस समय जैसा कर्त्तव्य अप्राप्त हो, वह करता हुआ मैं सुखी हूँ।३

कर्मों के करने व उनके त्यागने में अभिमान (हठ) अज्ञानियों को होता है, मैं इनकी प्राप्ति और अप्राप्ति से रहित हुआ सदा सुख स्वरूप में स्थित हूँ।४

स्थिति व चलने में मुझे अर्थ, अनर्थ कुछ नहीं, अतः चलना व स्थित होना तथा शयन आदि की सत्यता से रहित शुद्ध, निर्धर्मक स्वरूप (आत्म) में मेरी स्थिति हुई है।५

सोने में हानि और प्रयत्न से सिद्ध कुछ नहीं होता, अतः मलिनता व प्रसन्नता को बाध (मिथ्या जान) कर सुख स्वरूप में स्थित हुआ हूँ।६

सब पदार्थों में सुख आदि के नियम को न देख, शुभाशुभ दृष्टि को त्याग कर मैं सुखपूर्वक स्थित हूँ।७

प्रकरण (१४)

स्वाभाविक चित्त से शून्य हुआ विद्वान्, स्वरूप के विस्मृति द्वारा पदार्थों में सुख की भावना सहित प्रवृत्त होता भी, नींद से जागे हुए के समान असंसारी होता है, अर्थात् यथा प्रारब्ध व्यवहार करता भी ज्ञानी सदा मुक्त है, उसकी चेष्टा बन्धन का कारण नहीं।१

जो मैं स्पृहा (ध्येय वासना) से रहित हूँ तो मेरे धन आदि कहाँ, तथा मित्रवर्ग कहाँ और विषय रूप चोर कहाँ, एवम् शास्त्र व विज्ञान कहाँ हैं, यानी मुझ (आत्मा) में यह कुछ भी नहीं।२

साक्षी, पूर्ण ब्रह्म, ईश्वर इनके अभेद निश्चय होने पर बन्ध व मोक्ष की वासना से रहित मुझे, मुक्ति के लिये चिन्ता नहीं, क्योंकि मैं नित्य मुक्त हूँ।३

हृदय में भेद कल्पना से रहित, तथा बाह्य (व्यवहार दशा) में प्रारब्धवश अपनी इच्छा से भ्रान्त मनुष्य के समान वर्तते हुए ज्ञानी की अन्तर्दशा को ज्ञानी ही जानता है।४

प्रकरण (१५)

सात्विकी बुद्धिवाला मुमुक्षु अल्प उपदेश से कृतार्थ होता है, परन्तु मतिमन्द जन्म भर उपदेश को सुनता हुआ भी अधिक मोह (अज्ञानता) को प्राप्त होता है।१

शब्द आदि विषयों में आसक्ति को त्याग करना मुक्ति, और इनमें आसक्त रहना बन्ध है, यही विज्ञान है। जैसी तेरी इच्छा हो वैसी धारणा कर।२

यह तत्व बोध, वाणी में कुशल (उपदेशक) को मूक (निर्वाच्य पद में स्थित) और शास्त्रज्ञ को जड़ (जगत् को जड़ निश्चय करनेवाला), तथा प्रयत्नशील को आलसी (कर्तृत्व के अभाव का जाननेवाला) बनाता है और भोक्तृत्व बुद्धिवालों ने यह बोध दूर से त्यागा है अर्थात्

ब्रह्म बोध सब विपर्यय को नष्ट करता है यही व्यवस्था निर्दोष और सार्थक है।३

तू देह नहीं, न तेरी देह है, हे तात! तू कर्त्ता, भोक्ता नहीं, अतः चैतन्यरूप सबका साक्षी हुआ सुखी विचर।४

राग, द्वेष मन के धर्म हैं, मन से तेरा कोई सम्बन्ध नहीं, तू सब भेदों से रहित बोधात्मा पूर्ण है, इसलिये तू शान्त रूप हुआ सुख से विचर। ५

सब भूतों में आत्मा को व्यापक और भूतगण में आत्मा को कल्पित निश्चय कर तू निरहंकारी व ममता से रहित हुआ सुखी हो, यानी आत्मा को आनन्द रूप जान। ६

जिसमें यह विश्व सागर में तरंगों के समान स्फूर्त्त (भासता) है वह तू है, इसमें संशय नहीं, इसलिये हे चैतन्य रूप! तू संताप (विपर्यय वासना) से रहित हो। ७

हे तात! वेद, वेदान्त व गुरु-वाक्यों में विश्वास रख इनमें संशय मत कर, तू ज्ञान स्वरूप भगवानात्मा प्रकृति से परे (अतीत) है, ऐसा दृढ़ निश्चय कर। ८

त्रिगुणमय इन्द्रियों सहित देह (प्राण, अन्तःकरण) स्थित हैं, और यही लोक, लोकान्तर में आते जाते हैं, इसलिये तू इनका शोच (संशय) क्यों करता है ? ९

देह कल्प भर स्थिर रहे अथवा अभी चली जाय (नष्ट हो), तुझ चैतन्यस्वरूप की हानि व वृद्धि कहाँ है।१०

अनन्त अपार तुझ समुद्र में तरंग के समान प्राकृतिक

T

संसार उदय, अस्त होता है, तुझ चैतन्य को इससे वृद्धि और हानि कदाचित् नहीं होती ।११

हे तात ! तू चैतन्य रूप है, यह जगत् तेरे से भिन्न नहीं, इसलिये किसको व किसमें और किस प्रकार त्याज्य, ग्राह्य रूप भेद कल्पना हो, यानी ब्रह्म अद्वैत है ।१२

एक अविनाशी, शान्तरूप, पूर्ण चैतन्य, शुद्ध स्वरूप में जन्म कहाँ, कर्म कहाँ, तथा अहंकार कहाँ ।१३

जैसे सोने के बने हुए कटक (काँटा) बाजूबन्द और नूपुर (बिछुआ) स्वर्ण से पृथक् नहीं होते, किन्तु सब में एक स्वर्ण सत्य है तैसे सर्वत्र पूर्ण तू आत्मा एक है ।१४

सो यह मैं हूँ और यह मैं नहीं, इस भेद को त्याग सब में आत्मा निश्चय करके निर्वासनिक हुआ सुखी हो ।१५

विश्व तेरे में अज्ञान से होता है, परमार्थ से तू एक है, अतः संसारीपना तेरे से भिन्न नहीं और असंसारी (मुक्त-पना) भी तुझ आत्मा से कदाचित् अलग नहीं ।१६

यह विश्व भ्रान्ति मात्र है वास्तव से कुछ नहीं, ऐसा निश्चय सहित निर्वासनिक, स्फूर्तिरूप तुझ में जगत् सत्य नहीं, यह जानकर तू सदा शान्त रूप बन ।१७

संसार समुद्र में पहले तू एक था व अब भी तू है और आगे भी होगा, इसलिये तुझ पूर्ण स्वरूप में बन्ध, मुक्ति वास्तव से नहीं, अतः तू कृतकृत्य हुआ आनन्द से विचर ।१८

हे चैतन्य स्वरूप ! तू संकल्प, विकल्प (वासनाओं) से

चित्त को चंचल मत कर, हे आनन्दमय तू स्वात्मा में सुख-पूर्वक स्थित हो, यानी आत्मा को सुख स्वरूप जान ।१९

हे तात! तू सर्वत्र ध्यान को त्याग दे, और किसी में आसक्ति मत कर, तू (आत्मा) सदा मुक्त है, इसलिये वृथा विचारों को तू क्यों करता है, शान्त स्वरूप हो ।२०

प्रकरण (१६)

हे तात! बहुत शास्त्रों को अनेक बार औरों के प्रति उपदेश तू करे अथवा उनको स्वयं सुनता रहे, तो भी सबके विस्मरण (मिथ्या निश्चय) किये बिना तुझे शांति न होगी ।१

हे विद्वान्! तू भोगों को भोग वा कर्मों का अनुष्ठान कर अथवा समाधिवान हो, पर वासना से रहित हुआ तेरा चित्त परमार्थ में विशेष प्रीति करेगा ।२

सम्पूर्ण प्राणी अधिक प्रवृत्ति से दुःख पाते हैं, पर इस अर्थ को कोई नहीं समझता, इस उपदेश से भाग्यशाली विद्वान निवृत्ति करके आनन्द को प्राप्त होता है ।३

जो नेत्रों को खोलना व मूँदना इस अल्प क्रिया में भी आसक्ति नहीं करता, उस आलसी (कर्तृत्व से रहित) विद्वान् को आत्मानन्द स्फूर्ति (प्रगट) होता है, और को नहीं ।४

यह किया है, यह नहीं किया, इस द्वंद से जब हृदय मुक्त होता है तभी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की इच्छा को त्यागता है; अर्थात् आत्मा को सदा मुक्त आनन्दरूप जानता है ।५

वैराग्यवान् विषयों में दोष-दृष्टि, व रागी उनमें आसक्ति करता है; त्याग अथवा ग्रहण बुद्धि से रहित विद्वान्-स्वरूप, दृष्टि से न वैराग्यवान् और न रागी होता है।६

अविचार दशा में जब तक जीवने की इच्छा होती है तब लग उसके हृदय में त्याज्य व ग्राह्य यह भेद वासना रूप, संसार-वृक्ष का अंकुर विद्यमान रहता है।७

प्रवृत्ति से राग व निवृत्ति से विषयों में दोष-दृष्टि होती है, अतः विज्ञ बालवत् (निरहंकारी), निर्द्वन्द्व होता है।८

विषयों में आसक्त मनुष्य, दुःख के त्यागने की इच्छा से जगत् का नाश चाहता है, पर विरक्तजन मुक्तात्मा हुआ, उसमें खेद नहीं मानता वह सदा समदृष्टि रखता है।९

जिसको मुक्ति में अभिमान व देह में ममता बनी रहती हैं, वह न ज्ञानी, न योगी है, केवल दुःख भोग रहा है।१०

जो शिव व विष्णु तथा ब्रह्मा भी तुझे उपदेश करें, तो भी सब जगत् के विस्मरण (असत्य जाने बिना) तुझे शान्ति कभी प्राप्त न होगी।११

प्रकरण (१७)

जो संतुष्ट व शुद्ध इन्द्रिय हुआ सदा एकान्तसेवी है, उसने ज्ञान व योग अभ्यास का फल पाया है।१

हर्ष है ज्ञानी जगत् में कभी दुःखी नहीं होता, क्योंकि उस एक करके यह संसारमण्डल पूर्ण हो रहा है।२

मधुर व कोमल केले के पत्तों को खाने वाला गजेन्द्र

जैसे नीम को खाना नहीं चाहता तैसे स्वात्मा रामी (ब्रह्माभ्यासी) विद्वान् विषय भोगों से कभी हर्षित नहीं होता। ३

भोगे हुए पदार्थों में जो आसक्त नहीं होता, और पहले न भोगे हुए विषयों की इच्छा भी नहीं करता, ऐसा पुरुष दुर्लभ है।

इस जगत् में भोगों की इच्छावाले तथा मोक्ष को चाहनेवाले बहुत हैं, पर भोग, मोक्ष की इच्छा से रहित महात्मा अल्प हैं।५

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में तथा जीने व मरने में उदारचित्त (विद्वान्) की त्याज्य, ग्राह्य बुद्धि नहीं रहती।६

जिसको विश्व के लय की इच्छा नहीं तथा उसकी स्थिति में द्वेष नहीं, वह जीवित दशा में सुखपूर्वक स्थित होता है।७

इस ज्ञान करके कृतार्थ, और इसी पुरुषार्थ से मलिन वासनाओं को दूर करके देखता, सुनता, स्पर्श करता, सूँघता, खाता हुआ विद्वान् सुखपूर्वक विराजमान होता है।८

क्षीण हुआ है संसार समुद्र जिसका, ऐसे विद्वान् की दृष्टि (वृत्ति) शून्य, क्रिया निष्प्रयोजन तथा इन्द्रियाँ उदासीन होती हैं, अतः वह इच्छा, अनिच्छा से रहित है।९

विद्वान् न जागता, न सोता, न पलकों को खोलता और नेत्र मूँदता है, वह ज्ञान-दृष्टि से सबको मिथ्या जानता है।१०

जीवन्मुक्त सब में शान्त और सर्व दशा में शुद्ध हृदय होता है तथा सभी वासनाओं से अतीत व सब भाव में आनन्दित हुआ सर्वत्र सुशोभित होता है।११

T

देखता, सुनता, स्पर्श करता, लेता, भोजन खाता, बोलता तथा चलता भी इच्छा, अनिच्छा से अतीत हुआ महात्मा सदा जीवन्मुक्त है ।१२

जीवन्मुक्त न निन्दा, न स्तुति ही करता है तथा हर्ष क्रोध से रहित और देने, लेने से वर्जित हुआ किसी में प्रीति नहीं करता है ।१३

प्रेम सहित स्त्री को तथा मृत्यु को समीप स्थित देखकर भी सावधान मन वाला शान्तात्मा, विद्वान् सदा मुक्त है ।१४

सुख, दुःख में और पुरुष, स्त्री में तथा सम्पत्ति, आपत्ति में धीर (समदर्शी) विद्वान् को, इन में कुछ विशेषता नहीं भासती, वह ज्ञानदृष्टि से सब को मिथ्या जानता है ।१५

नष्ट हुआ है संसरण (बाह्य फुरणा) जिसका, वह हिंसा, कृपा, धूर्तता, दीनता और आश्चर्य, क्षोभ आदि सब से मुक्त है ।१६

जीवन्मुक्त विषयों में द्वेष नहीं करता, तथा उनमें रागवान् भी नहीं होता, अतः उदासीन हुआ यथाप्राप्त को भोगता है ।१७

जगत् की सत्यता से रहित (शून्य) चित्त वाला पुरुष समाहित और विक्षेप तथा कल्याण, अकल्याण की भेद कल्पना को नहीं जानता, उसकी अद्वैत ब्रह्म में निष्ठा है ।१८

ममता, अहंता किंचित् भी सत्य नहीं, ऐसा निश्चय कर अन्तर सब वासनाओं से रहित विज्ञ, कर्त्ता भी अकर्त्ता (असंग) है।१९

मन का प्रकाश (सात्विक) व अधिक राग (राजस) तथा जड़ रूप निद्रा (तामस) इन तीनों गुणों से रहित हुए ज्ञानी के मन की बाह्य वृत्तियाँ अभाव रूप होती हैं, वह अद्भुत (गुणातीत) दशा को प्राप्त होता है।२०

प्रकरण (१८)

जिसके ज्ञान होने से भ्रम रूप जगत् असत्य भासता है, उस आनन्द रूप, शान्त (निर्विकार) प्रकाशमान (ज्योतिमय) आत्मा को मेरा नमस्कार है।१

विशेष पदार्थों के संग्रह से अधिक भोगों को प्राप्ति हो सकती है, पर सर्व त्याग (अहंकार के निवृत्त हुए) बिना मनुष्य सुखी कदाचित् नहीं होता, उल्टी तृष्णा बढ़ती है।२

कर्तव्यता (आत्मा को कर्त्ता जानना) इस दुःखमय सूर्य की महान् तप्तता करके जिसका हृदय जल गया है, उसको ज्ञान प्राप्ति रूप शान्ति धारा में स्थित हुए बिना सुख नहीं होता।३

सब पदार्थ भावनामात्र हैं, परमार्थ से सत्य नहीं, पर भाव, अभावरूप संसार का व्यवहार दशा में नाश नहीं होता, इसलिये केवल भावों को सुधारना चाहिये।४

निर्विकल्प (अद्वैत मात्र) व बिना परिश्रम, स्वतः सिद्ध और माया से अतीत, निर्मल, निर्विकार ब्रह्म दूर नहीं

तथा परिच्छिन्न भी नहीं, वह सदा उपलब्ध (ज्ञानमय) आत्मा विद्यमान है।५

निरावरण दृष्टि करके, संमोह (अज्ञान) के दूर हुए, स्वरूप के अनुभव होने से विद्वान् शोक (संशय) रहित हुआ सुशोभता है।६

सब जगत् कल्पित व आत्मा नित्य मुक्त, अनादि है, इस निश्चय से ज्ञानी बालक के सदृश किसका अभ्यास करता है?७

आत्मा ब्रह्मस्वरूप है और भाव, अभाव रूप जगत् कल्पित है ऐसा निश्चय करके निष्काम विद्वान् अपने से भिन्न क्या जाने व क्या कहे और क्या करे, वह सदा अकर्त्ता (मुक्त) स्वरूप है।८

सर्वत्र आत्मा पूर्ण है, इस निश्चय द्वारा शान्ति को प्राप्त हुए योगी (ज्ञानी) को, सो यह मैं हूँ व यह मैं नहीं, इस प्रकार की भेद कल्पना नष्ट होकर अद्वैत ब्रह्म में स्थिति होती है।९

शान्त रूप योगी (ज्ञानी) की दृष्टि में विक्षेप, एकाग्रता तथा विज्ञान, मूर्खता और सुख, दुःख नहीं होते।१०

निर्विकल्प स्वभाव में निष्ठा वाले ज्ञानी को राज्य सम्पत्ति व भिक्षावृत्ति में तथा लाभ, हानि और जन-समुदाय व एकान्त में स्थिति, यह सब स्वरूप दृष्टि से समान होते हैं।११

यह किया है, यह नहीं किया, इस द्वन्द से अतीत

राज योगी को धर्म कहाँ, इच्छा कहाँ, पदार्थ कहाँ तथा विचार आदि सत्य कहाँ है ?१२

जीवन्मुक्त योगी को यहाँ कुछ कर्तव्य नहीं और हृदय में राग भी नहीं। वह केवल देह यात्रा सिद्ध करता है।१३

सब संकल्प (भावना) की अवधि रूप ब्रह्म ज्ञान में विश्राम पानेवाले महात्मा के लिये मोह, संसार व उसकी चिन्तना तथा मुक्तपना सत्य कहाँ हैं ?१४

विश्व को जो सत्य जानता है वह इसके अभाव की भावना करे, जो संसार को देखता हुआ भी सत्य नहीं मानता, वह निष्काम हुआ क्या करेगा, उसके स्वरूप में कोई विकार नहीं।१५

ब्रह्म को जो भिन्न मानता है मैं ब्रह्म हूँ, वह ऐसा चिन्तन करे, पर जो द्वैत को नहीं जानता वह निश्चिन्त ज्ञानी किसका चिंतन करे।१६

जो आत्मा (स्वरूप) में विक्षेप मानता है वह मनका निरोध करे, पर विद्वान् विक्षेप को कदाचित् नहीं जानता हुआ, प्रयोजन के अभाव से कुछ नहीं करता।१७

जगत् के विक्षेप से रहित धीर (ज्ञानी) औरों के समान प्रवृत्त हुआ भी समाधि व विक्षेप तथा संग को स्वरूप में नहीं जानता, अतः उसके लिये कर्तव्य कुछ नहीं रहता।१८

विद्वान् तृप्त (संतुष्ट) व भाव, अभाव की कल्पना से रहित, बाह्यदृष्टि से व्यवहार करता हुआ भी अपनी दृष्टि में

T

कुछ नहीं करता, किन्तु स्वरूप में इनका अभाव जानता है।१९

दैववश जिस काल में जैसा कर्त्तव्य आ प्राप्त हो उसको करता भी ज्ञानी सुखी रहता है, यानी प्रवृत्ति व निवृत्ति में धीर (विद्वान्) को हठ (अभिमान) कभी नहीं होता।२०

निष्काम विद्वान्, निराश्रय, स्वतंत्र (यथोच्छित) सब बन्धनों से रहित हुआ, पूर्वले संस्कार रूप वायु के वेग से सूखे पत्तों के सदृश देह निर्वाह अर्थ व्यवहार करता है।२१

जीवन्मुक्त को किसी में हर्ष व विषाद नहीं होता, वह शीतल हृदय, विदेह के समान (निरहंकारी) हुआ शोभता है।२२

शांतस्वरूप आत्मा रामी (ब्रह्माभ्यासी) ज्ञानी को किसी के त्याग की और किसी की प्राप्ति की इच्छा नहीं होती।२३

स्वाभाविक शून्यचित्त (निरहंकारी) विज्ञ, दैववश जो कुछ प्राप्त हो, उसको करता हुआ मान, अपमान से मुक्त है।२४

यह कर्म शरीर से होते हैं, मैं (शुद्धात्मा) नहीं करता, इस प्रकार का विवेकी सब कुछ करता भी सदा मुक्त (अकर्त्ता) है।२५

जीवन्मुक्त वाचाल के समान करता भी अज्ञानी नहीं होता, इसलिये सब व्यवहार करता हुआ भी सुखी और दैवी सम्पत्तिवान् हुआ सुशोभता है, उसके दीनता, मलीनता नहीं होती।२६

सांसारिक अनेक वासनाओं से थका हुआ शांति को पाकर, संकल्प, जानना, सुनना, देखना इत्यादि क्रियाओं को विद्वान् करता भी है पर स्वरूप दृष्टि से कुछ नहीं करता।२७

ज्ञानी समाधि करता भी मुमुक्षु नहीं बनता और विक्षेपी (प्रवृत्त शील हुआ) अज्ञानी नहीं होता, किन्तु इन सब को असत्य जानकर महात्मा केवल ब्रह्म में स्थित होता है।२८

जिसके हृदय में परिच्छिन्न अहंकार है, वह न करता भी सब कुछ करता है और देहाभिमान से रहित विद्वान् को करना व न करना कोई भी बन्धन नहीं करता।२९

मुक्त पुरुष को चंचलता व संतोष कभी नहीं होते, वह वासना व संशय आदि से रहित हुआ सुशोभता है।३०

ज्ञानी का चित्त ध्यान और व्यवहार करने में कर्त्ता बुद्धि से प्रवर्त्त नहीं होता, किन्तु बिना कारण ध्यान व चेष्टा करता है।३१

मतिमन्द मनुष्य, जीव, ब्रह्म की एकता को निश्चय न करके अज्ञानता को प्राप्त होता है, अथवा बाह्य साधनों में लगता है पर विद्वान् व्यवहार करता भी अज्ञानी नहीं होता।३२

अविचारी मनुष्य मनके एकाग्र व निरोध करने के लिये अभ्यास करता है पर विद्वान् अपने में कर्तव्य न मान कर सुषुप्त के सदृश स्वरूप में स्थित होता है।३३

अज्ञानी प्रयत्न करता भी निवृत्ति सुख को नहीं पाता, पर विद्वान् ब्रह्मात्मा के ऐक्य ज्ञान से निवृत्ति के आनन्द को प्राप्त होता है।३४

हठ योग के अभ्यास में तत्पर हुए मनुष्य, मन, वाणी के अविषय, माया उपाधि से रहित, केवल ज्ञान स्वरूप,

T

आनन्दमय, प्रपंच से अतीत, निर्दुःख रूप आत्मा को यथार्थ नहीं जानते।३५

अज्ञानी हठ योग के अभ्यास करने से मुक्ति को नहीं पाता, पर भाग्यशाली ज्ञान को पाकर कैवल्य मुक्ति को प्राप्त होता है।३६

विचारहीन बाह्य साधनों के द्वारा ब्रह्म होने की इच्छा करता भी ब्रह्मतत्व को प्राप्त नहीं होता और विज्ञानी नहीं इच्छा करता भी ब्रह्म स्वरूप को पाता है, अतः आत्मज्ञान ही सर्वोत्तम है।३७

मूढ़ निराश्रय (स्वतंत्र) अर्थात् सद्गुरु व वेदान्त की युक्ति के बिना, यत्न करता हुआ भी संसार को ही दृढ़ करता है, पर विद्वान् अनर्थ के मूल अज्ञान को नष्ट करता है, अतः वह मुक्त स्वरूप है।३८

अज्ञानी बाह्य साधनों के द्वारा शान्ति पाने की इच्छा करता भी शान्त नहीं होता, पर ज्ञानी तत्व को निश्चय करके शान्ति को प्राप्त होता है, उसको विक्षेप स्पर्श नहीं करता।३९

जो दृश्य को सत्य मानता है उसको आत्मज्ञान नहीं होता, विज्ञानी संसार को सत्य नहीं जानता हुआ अविनाशी आत्मा को प्राप्त होता है, अर्थात् वह अद्वैत ब्रह्म में विश्राम पाता है।४०

मूढ़, मन के निरोधार्थ वृथा हठ करता है, ज्ञान

के द्वारा आत्मा में रमन करनेवाला सदा अकृत्रिम में विश्राम पाता है।४१

कोई जगत् को सत्य और कोई शून्य रूप जानता है पर भाव, अभाव दोनों की कल्पना से रहित ज्ञानी शान्त होता है।४२

अल्पमति मनुष्य शुद्ध, अद्वितीय, स्वयं प्रकाश आत्मा को बुद्धि की वृत्ति द्वारा ध्यान करते भी यथार्थ न जानकर, जब तक जीते हैं, मोहवश दुःखी रहते हैं। मन, वाणी का विषय आत्मा नहीं।४३

मुमुक्षु की बुद्धि निरालम्ब नहीं रहती, उसको अभ्यास करना पड़ता है, पर जीवन्मुक्ति निष्काम, निराधार स्वरूप में स्थित हुआ स्वदृष्टि से कुछ नहीं करता।४४

विषय रूप व्याघ्र से भयभीत हो बचने के लिए चित्त के निरोध व एकाग्र अर्थ मूढ़, पर्वतों की कन्दरा में शीघ्र प्रवेश करता है, पर विज्ञ, आत्मा को निर्विकार, निर्भय, स्वयं प्रकाश मानकर निष्कर्तव्य होता है।४५

विषयरूप हस्ती निर्वासनिक रूप सिंह को देखकर चुपके हुए दूर भाग जाते हैं अथवा दासों के समान सेवा करते हैं, यानी विज्ञ के लिये दुःखदाई नहीं होते।४६

संशय आदि रहित, युक्त मन वाला ज्ञानी, मोक्ष के साधनों को नहीं धारता, किन्तु व्यवहार करता भी सुख-स्वरूप में स्थित होता है।४७

T

तत्त्व को सुनकर, शुद्ध हृदय, सावधान मन वाला विद्वान्, शुभाचार व अनाचार से उदासीन हो केवल स्वरूप को ही देखता है।४८

जिस काल में जैसा व्यवहार प्राप्त हो, ब्रह्मवेत्ता निष्कपट होकर करे है, उसकी चेष्टा बालवत् (निरभिमान) होती है।४९

स्वतन्त्र (राग द्वेष से रहित) हुआ मनुष्य सुख पाता है और ज्ञान को भी प्राप्त होता है, वही निवृत्ति प्रधान हुआ ब्रह्म में स्थित होता है यानी निर्वासनिक पुरुष सर्वथा कल्याण को प्राप्त होता है।५०

जिस काल में आत्मा को अकर्त्ता, अभोक्ता निश्चय करता है तब उसके चित्त की वृत्तियाँ क्षीण (बाध) होती हैं।५१

धीर (विज्ञ) स्वाभाविक शान्ति को पाता है पर उद्वेगी मूढ़, इच्छावश बनावटी शान्ति से शोभा नहीं पा सकता।५२

निर्बंध, मुक्त हृदय, भेद कल्पना से रहित ज्ञानी, प्रारब्धवश भोगों से विकसित होता अथवा पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करता है।५३

विद्वानों, देवताओं, तीर्थों को पूजता और प्रिय स्त्रियों, भूपति को देखकर ज्ञानी के हृदय में विपर्यय वासना नहीं होती।

नौकरों, पुत्रों, स्त्री जनों, धेवतों और नाती आदि गोत्रियों से उपहास व धिक्कार को प्राप्त हुए भी ज्ञानी के हृदय में कुछ विकार नहीं होता, किन्तु आत्मा को सदा निर्विकार जानता है।५५

ज्ञानी बाह्य संतुष्ट हुआ भी संतोषी नहीं तथा खिन्न हुआ भी दुःखी नहीं होता, उसकी अन्तर दशा को वैसा (ज्ञानी) ही जान सकता है।५६

कर्तव्य मानना ही संसार (बन्ध) है, ब्रह्मवेत्ता कर्तृत्व को स्वरूप में नहीं देखता, किन्तु निराकार, निर्विकार, परमानन्द रूप ब्रह्म में स्थित रहता है। आत्मा को कर्त्ता जानना यह अज्ञान है।५७

अज्ञानी क्रिया त्यागकर भी बड़े क्षोभ को पाता है, विद्वान् चेष्टा करता भी सदा सावधान (अकर्त्ता) है।५८

शान्त हृदय ज्ञानी आनन्दपूर्वक आता, जाता व कहता और सुख, दुःख को भोक्ता भी आनन्द पूर्वक स्थित होता है।

अज्ञानी जनों के सदृश व्यवहार करते हुए ज्ञानी को स्वाभाविक कलेश नहीं होता, वह महाजलाशय के समान अचल, निश्चय, दुःख से अतीत हुआ शोभा पाता है।६०

मूढ़ की निवृत्ति भी विक्षेप (दुःख) को प्राप्त करती है और विद्वान् की प्रवृत्ति भी आनन्द को देने वाली है।६१

अज्ञानी बिराने पदार्थों के ग्रहण में वैराग्य करता है। निष्काम विद्वान् राग, वैराग्य दोनों को स्वरूप में नहीं देखता।

मूढ़ शुभाशुभ भावना में आसक्ति (अहंता व ममता) करता है, पर ब्रह्मवेत्ता पदार्थों की भावना से रहित होता है।

जो मुनि निरहंकार हुआ सब क्रिया करता है, उस

निष्काम, शुद्ध हृदय, सब कर्मों को करता भी लिप्त नहीं होता।

वह आत्मज्ञानी धन्यवाद के योग्य है जो सब भावों में समदृष्टि हुआ देखता, सुनता, स्पर्श करता, सूँघता, खाता इत्यादि व्यवहार करता भी ध्येय (विपर्यय) वासनाओं से अतीत है।६५

आकाश के समान सदा निर्लिप्त, ऐसे विद्वान् की दृष्टि में प्रकाश (ज्ञान) कहाँ, उसका फल (मुक्ति) कहाँ और श्रवण आदि साधन कहाँ ?६६

परमानन्द में स्थित हुए यथार्थ त्यागी को सर्वत्र कल्याण है, उसकी प्रज्ञा, अनादि, व्यापक ब्रह्म में स्थित रहती है।६७

बहुत कथन से क्या प्रयोजन है तत्त्वज्ञानी महात्मा, भोग व मोक्ष की इच्छा से रहित सदा जीवन्मुक्त है।६८

यह द्वैत नाममात्र से विस्तार को पा रहा है, अतः महतत्त्व आदि जगत् को मिथ्या जानकर, शुद्ध ज्ञान वाले योगी को किञ्चित कर्त्तव्य शेष नहीं रहता।६९

संसार भ्रममात्र है परमार्थ से किंचित् भी नहीं, इस प्रकार निश्चय करके मन, वाणी का अविषय, चैतन्यमय, शुद्ध स्वरूप में स्थित हुआ ज्ञानी परम शान्ति पाता है।७०

दृश्य (संसार) की सत्यता को न देखते हुए, शुद्ध चैतन्य स्वरूप ज्ञानी जन के लिए शास्त्रों की विधि व वैराग्य और उपरामता तथा शम आदि साधन सत्य कहाँ हैं?७१

अनन्त आत्मा के ज्ञान से प्रकृति को सत्य नहीं जानते हुए विद्वान् को बन्ध, मुक्ति तथा हर्ष, विषाद कहाँ हैं।७२

बुद्धि तक जगत् माया का चमत्कार है, अतः ममता, अहंता से रहित निर्वासनिक ज्ञानी शोभता है।७३

संताप से रहित, अविनाशी आत्मा को निर्विकार जानने वाले मुनि की दृष्टि में विद्या, संसार, शरीर, अहंकार और ममता सत्य कहाँ है, सबका अत्यन्ताभाव है।७४

अज्ञानी जब निरोध (समाधि) से उत्थान होता है तभी अनेक मनोर्थों और वाणी के विलासों, तथा आरम्भों को करता है पर शान्ति की प्राप्ति ज्ञान के बिना नहीं होती।७५

मतिमन्द उस तत्व को सुनता भी अज्ञानता को त्यागता नहीं, वह परिश्रम करके बाहर से निर्विकल्प दीखता हुआ भी अन्तर भावना से पदार्थों में आसक्त होता है।७६

ब्रह्मज्ञान से जिसके सब कर्म दग्ध हुए हैं, वह व्यवहार दशा से कर्मों को करता भी है, पर उसमें करने व कहने का अवसर नहीं, यानी उसको कोई क्रिया स्पर्श नहीं कर सकती।७७

काल के भय से रहित सदा निर्विकारी विद्वान् के लिए अज्ञान कहाँ, प्रकाश कहाँ, उसकी किसी भी प्रकार से अवनति नहीं हो सकती, वह निर्लेप पद को प्राप्त हुआ है।७८

वाणी से अतीत ब्रह्मनिष्ठा वाले, प्रकृति से रहित विद्वान् को धीरज कहाँ तथा विचार कहाँ एवम् निर्भयता कहाँ, यानी मिथ्यारूप व्यवहार संसार दशा में होते हैं।७९

बहुत कहने से क्या, एकता-दृष्टि से स्वर्ग, नरक नहीं और जीवन्मुक्ति भी नहीं अर्थात् अद्वैतदर्शी विद्वान् को कोई भी शब्द, अर्थ सत्य नहीं भासता ।८०

निर्वासनिक ज्ञानी शान्त मनुष्य की प्रशंसा व दुष्ट की निन्दा नहीं करता, किन्तु स्वरूप-दृष्टि से उसका हृदय संतुष्ट व सुख, दुःख में समान, तथा ध्येय वासना से रहित हुआ, आत्मा में कुछ कर्त्तव्य नहीं देखता ।८२

हर्ष, क्रोध से रहित विज्ञ संसार में दोषदृष्टि व आत्मा के पाने की भी इच्छा नहीं करता; वह मरणे, जीने से रहित निर्विकार पद में स्थित होता है, उसकी दृष्टि में कुछ सत्य नहीं ।८३

स्त्री, पुत्र आदि में राग रहित, विषयों की वासनाओं से अतीत ज्ञानी, शरीर को सत्य न जानकर सुशोभता है ।८४

जहाँ समय देखे वहाँ स्थित होता व देशों में स्वेच्छित गमन करता है, अतः यथाप्रारब्ध विचरता हुआ विज्ञ संतुष्ट है।

स्वरूप में स्थित, जगत् को मिथ्या देखनेवाले महात्मा को कुछ चिन्ता नहीं, क्योंकि वह सब धर्मों से असंग है ।८६

अद्वैतदर्शी, सत्य संकल्प, निर्द्वन्द, संशय रहित, पदार्थों में आसक्ति से रहित हुआ ज्ञानी शुद्ध स्वरूप में रमन करता है।

सर्वत्र ममता से रहित, लोहा, पत्थर, स्वर्ण में समदृष्टि और जड़-चैतन्य संबन्ध से अतीत, रज, तम गुणों से मुक्त, ऐसा धीर निज रूप में शोभा पाता है ।८८

T

आसक्ति को त्याग कर जिसके हृदय में कोई वासना नहीं, उस मुक्त, संतुष्टात्मा को किसकी उपमा दी जाय ?८९

जो जानता हुआ जगत् को सत्य नहीं मानता और देखता हुआ संसार में सार नहीं देखता, तथा करता भी नहीं करता, उस निर्वासनिक से भिन्न दूसरा कौन हो सकता है ?९०

जिसकी सब पदार्थों में शुभाशुभ भावना-निवृत्ति हुई है वह निष्काम विद्वान् राज्यभोग व भिक्षावृत्ति रूप सब दशाओं में सुशोभित होता है, उसकी त्रिलोकी में जय है।९१

जो सरल, कोमल हृदय हुआ तत्त्व ज्ञान को सिद्ध करता है, उस योगी को स्वतन्त्रता व संकोच और आत्मा का निश्चय यह कोई भी सत्य नहीं, वह निर्वाच्यपद को प्राप्त हुआ है।९२

आत्मनिष्ठा रूप अमृत से तृप्त, निराश हृदय, ऐसे ज्ञानी का जो निश्चय है, उसको किससे और कैसे कह सकेगा।९३

सर्वत्र संतुष्ट हुआ ज्ञानी, सुषुप्त हुआ सोता नहीं व स्वप्न देखता भी निद्रा रहित है और जाग्रत हुआ भी जागता नहीं अर्थात् वह तीनों अवस्थाओं को सत्य नहीं जानता।९४

विज्ञ चिन्ता सहित निश्चिंत व इन्द्रिय संयुक्त भी इन्द्रियों से अतीत और बुद्धि सहित हुआ भी बुद्धि के बिना तथा अहंकारी हुआ भी अहंकार रहित है, अर्थात् विज्ञ सब धर्मों से अतीत, अद्वैत, निर्वाच्य स्वरूप है।९५

T

ज्ञानी न सुखी, न दुखी, न विरक्त, न संगवान् तथा न मुमुक्ष, न मुक्त, एवम् न किंचित्, न अकिंचित् ही है, वह सब शब्दों से परे ब्रह्म को अपना वास्तव स्वरूप जानता है।९६

भाग्यशाली विद्वान् विक्षिप्त हुआ भी विक्षेपी नहीं, व समाधि में स्थित हुआ भी समाधि वाला नहीं होता, जड़ता सहित वह जड़ नहीं, तथा पण्डित हुआ भी पण्डित नहीं होता, यानी व्यवहार दशा में ज्ञानी सब कुछ मानता है और परमार्थ से उनको सत्य नहीं जानता।९७

यथाप्राप्त में सावधान व कृतकर्त्तव्य से रहित सब में समदृष्टि, मुक्त हुआ विज्ञ कृत-अकृत को सत्य नहीं जानता।९८

ज्ञानी पूजित हुआ भी प्रसन्न नहीं होता व निन्दित हुआ क्रोधित नहीं होता और मरण में उद्वेग, तथा अधिक जीने में प्रेम नहीं करता, वह सबसे असंग रहता है।९९

शान्तरूप ब्रह्मवेत्ता जन-समुदाय को धावता नहीं तथा एकान्त को भी नहीं चाहता, उसकी सर्वत्र समदृष्टि है।१००

प्रकरण (१९)

सद्गुरु के सकाश से तत्त्वज्ञान रूपी सँडासी को ग्रहण करके हृदय से अज्ञानमय कंटक को मैंने निकाला है।१

स्वमहिमा में स्थित मुझ में धर्म, इच्छा, प्रयोजन, तथा द्वैत, अद्वैत कहाँ हैं, यह उपदेश तक होते हैं।२

सदा अपनी महिमा में स्थित मुझ को भूत, भविष्य व

वर्त्तमान कहाँ तथा देश, देशान्तर भी सत्य कहाँ हैं ?३

अपनी महिमा में स्थित मुझे आत्मा, अनात्मा व शुभा-शुभ और चिन्ता, अचिन्ता कहाँ हैं, यानी कोई सत्य नहीं।४

स्वमहिमा (निर्विकार स्वरूप) में स्थित हुये मुझको अद्वैत में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरया और भय की भेद कल्पना कैसे हो ?५

भिन्नता, समीपता व बाहर, अन्तर्दृष्टि तथा स्थूल सूक्ष्म व नाम रूप और क्रिया आदि मुझ अच्युत रूप में कहाँ है ?६

निर्विकार स्वरूप में स्थित मुझको मरणा, जीना तथा जगत् के पदार्थ और लय व समाधि, यह भी सत्य नहीं।७

आत्मा में विश्राम पाकर मुझ को धर्म, अर्थ, काम की चर्चा से और योग व विज्ञान की कथा से तृप्ति हुई है।८

प्रकरण (२०)

माया रहित मुझ (शुद्धात्मा) में आकाश आदि पाँच भूत व देह इन्द्रिय, मन कहाँ और शून्यपना व वैराग्य कहाँ है?

सब द्वन्दों से मुक्त, मुझ निर्धर्मक में, शास्त्र, आत्म-ज्ञान कहाँ तथा मन का वैराग्य व संतोष (तृप्ति) कहाँ सत्य है ?

मुझ में विद्या, अविद्या कहाँ तथा मैं, यह, मेरा, कहाँ व मुक्ति और आत्मा शब्द कहाँ, शब्दार्थों से परे मैं निर्वाच्य हूँ।३

सब भेदों से रहित मुझ में प्रारब्ध कर्म व जीवन्मुक्ति व विदेहत्व कहाँ—यह व्यवहार दशा में माने जाते हैं।४

प्रकृति से परे मुझ में कर्त्ता, भोक्ता व निष्क्रियता,

T

फुरणा तथा अपरोक्ष ज्ञान, उसका फल (मुक्ति) यह सत्य कहाँ हैं।

मुझ अद्वैत स्वरूप में तीनों लोक व योगी, ज्ञानी और बद्ध, मुक्त इत्यादि सब शब्द उपदेश तक हैं, सत्य नहीं।६

अद्वैत रूप मुझ में सृष्टि प्रलय, साध्य (फल) साधन, अधिकारी, सिद्ध (ज्ञानी) परमार्थ से कोई भी विद्यमान नहीं।७

मुझ शुद्ध स्वरूप में प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और यह है, वह नहीं, सब स्वप्न के सदृश भ्रममात्र हैं।८

नित्य व क्रिया रहित मेरे में विक्षेप, एकाग्रता, दृढ़ ज्ञान, अज्ञानता और प्रसन्नता व खेद सब का अभाव है।९

सब विचारों से रहित मुझ में व्यवहार, परमार्थ और सुख, दुःख यह तीनों कालों में नहीं, भ्रान्ति से सत्य भासते हैं।

शुद्ध रूप मेरे में माया, संसार और राग, वैराग्य तथा जीव, ब्रह्म यह शब्दार्थ सब उपदेश तक माने गये हैं।११

निष्क्रिय अभेद रूप, नित्य स्वस्थ, आत्मा में प्रवृत्ति, और बन्ध, मोक्ष इत्यादि वास्तव में सत्य नहीं।१२

सर्व उपाधियों से रहित मुझ शिव स्वरूप में उपदेश, शास्त्र, शिष्य, गुरु और परमार्थ यह ज्ञान, प्राप्ति के लिये हैं वास्तविक नहीं।१३

मुझ में है व नहीं और द्वैत, अद्वैत कोई भी सत्य नहीं। बहुत क्या कहूँ मेरे स्वरूप में सब शब्द, अर्थों का अत्यन्ताभाव है, अतः मैं नित्य मुक्त स्वरूप ब्रह्म हूँ।१४

॥ अष्टावक्र गीता समाप्त हुई ॥

T

जीवन्मुक्ति गीता

कोई कोई देहपात से मुक्ति मानते हैं। यदि यह सत्य हो तो श्वान, वाराह आदि सब को बिना साधनों के मुक्ति होनी चाहिये। मुनि दत्तात्रेय जी मुक्ति का निर्दोष स्वरूप वर्णन करते हैं।१

ईश्वर, जीव सब में ब्रह्म एक है, जिसको यह ज्ञान दृढ़ है वह जीवन्मुक्त है, यानी अद्वैत ब्रह्म का निश्चय करना ही जीवन्मुक्ति है।२

अज्ञानवश ब्रह्म ही जगत् रूप हो भासता है, वही सब का प्रकाशक है, इस ज्ञान को पाकर जीवन्मुक्त कहलाता है।३

जैसे जल-पात्रों में चन्द्रमा प्रतिबिंबित होता है, तैसे ब्रह्म को पूर्ण जानने वाले ज्ञानी को जीवन्मुक्त कहा है।४

भूत, भौतिक जगत् में सर्वत्र एक ब्रह्म रम रहा है, उसमें भेद, अभेद को कल्पना मिथ्या है, इस निश्चय सहित विद्वान् जीवन्मुक्त है।५

आकाश आदि पाँच भूत व भौतिक संसार (क्षेत्र) से अतीत चैतन्य रूप मैं क्षेत्रज्ञ हूँ, यह निश्चय जीवन्मुक्तों का है।६

कर्म-इन्द्रियों को बाधकर, ध्यान से रहित चित्त वाले आत्मज्ञानी को ही 'जीवन्मुक्त' शब्द से कहा गया है।७

यथा प्रारब्ध शरीर का व्यवहार कर्त्ता व शोक, मोह से अतीत और शुभाशुभ रूप भेद से रहित जीवन्मुक्त कहा है।८

T

कर्म आदि सब के उपदेश को सत्य न जानने वाले ब्रह्मवेत्ता को शास्त्रों में जीवन्मुक्त कथन किया है।९

संसार का प्रकाशक ब्रह्म चैतन्य है, इस निश्चययुक्त विद्वान् को ही जीवन्मुक्त नाम से कहा गया है।१०

शिवरूप जीव सब भूतों में, अनादि काल से स्थित, सब प्राणियों में निर्वैर रहने वाले अविनाशी पुरुष को जीवन्मुक्त कहते हैं।११

चैतन्य रूप सब का गुरु मैं विश्व से असंग हूँ और आना, जाना मिथ्या है इस निश्चय सहित जीवन्मुक्त है।१२

अन्तर्मुख दृष्टि वाले ज्ञानियों को एकात्मा का दृढ़ बोध है, इस ज्ञान के द्वारा कि मैं ब्रह्म हूँ, जिसका मन विलय होता है, वेद, वेदान्त में वही जीवन्मुक्त माना गया है।१३

जिसने उच्च दृष्टि के द्वारा मन का लय किया है, अर्थात् सूक्ष्म रचना को भी असत्य जानने वाला जीवन्मुक्त कहा है।१४

जिसका चित्त ब्रह्माभ्यास से विलीन हुआ है। बन्ध, मुक्ति को आरोपित माननेवाले को जीवन्मुक्त कहा है।१५

तीनों गुणों से अतीत, एकान्त सेवी, ब्रह्म में अभेद हुआ, ऐसा विज्ञानी जीवन्मुक्त कहा गया है।१६

जो अन्तर (आत्म) ध्यान से मन को बाधकर चैतन्य रूप जानता है, ऐसे दृढ़ अनुभववाले को जीवन्मुक्त कहा है।१७

T

जैसे शिव, शक्ति एक हैं, ऐसे ही पिराड (शरीर) ब्रह्माराड को एक जानकर, हृदय से मोह का त्यागी पुरुष जीवन्मुक्त है।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति से अतीत, तुरिया पद मैं हूँ, इस बोध से मायातीत ब्रह्म के ज्ञाता को जीवन्मुक्त कथन किया है।

जैसे माला के मणिकों में सूत पूर्ण होता है तैसे निराकार ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, वह मैं हूँ, ऐसे निश्चयवाले (ब्रह्मवेत्ता) को आगम, निगम जीवन्मुक्त वर्णन करते हैं ।२०

भेद, अभेद का कारण मन है, वही संकल्प-विकल्प का आश्रय है, ऐसे अनुभव वाले ज्ञानी को जीवन्मुक्त कहा है।

चित्त ही विश्व का कारण है, यह सब ज्ञानियों व विद्वानों का दृढ़ मन्तव्य है और यही मुक्ति का हेतु है, इस निश्चय वाले ब्रह्मवेत्ता को शास्त्रों में जीवन्मुक्त वर्णन किया है।

अद्वैत निश्चयवाले (राजयोगी) का मन उत्तम है। मन अन्तर्मुखता (अभ्यास) को त्यागकर बाह्य (जड़) दशा को प्राप्त होता है, पर बाह्य, अन्तर दोनों भावना को त्यागकर अभेद ज्ञानी जीवन्मुक्त कहा गया है ।२३

॥ इति जीवन्मुक्ति गीता तीनों संहिताएँ समाप्त हुई हैं ॥

जानों मिथ्या द्वैत, नाम रूप व्यवहार जग ।
नित्य मुक्त अद्वैत, ब्रह्म सच्चिदानन्द लखि ॥

T

वेदान्तार्थ का प्रकाशक कुंजी ।

नीचे लिखे भावों को ठीक जान लेने से वेदान्त सब स्पष्ट होवेगा ।

आनन्द—सुख, प्रिय, इष्ट, मोद, प्रसन्नता पर्याय शब्द हैं ।
अनुभव—ज्ञान, बोध, चैतन्य, प्रकाश, संवित, साक्षी पर्याय ।
आत्मा—स्वरूप, सबका प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक, अधिष्ठान ।
अखण्ड—सजाति, विजाति, स्वगत तीनों भेदों से रहित ।
अन्तर्मुख—सदा आत्मा का चिन्तन करनेवाला (आत्मरामी)।
अभ्यास—श्रवण, मनन, निदिध्यासन, निर्विकल्प समाधि ।
अन्तःकरण—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, यह चारों वृत्तियाँ।
अपवाद—मिथ्या का निषेध करके केवल सत्य का कथन ।
अनुबन्ध—विषय, संबन्ध, अधिकारी, प्रयोजन यह चारों ।
अर्थवाद—अभीष्टार्थ के प्रतिपादक प्रशंसा वाले वाक्य ।
अध्यास—अन्य धर्मों वाले पदार्थ में अन्य धर्मों की भ्रान्ति।
अनादि—उत्पन्न न हुआ हो व जिसकी आदि न जानी जाय।
आरोप—सत्य पदार्थ में अवस्तु (असत्य) का प्रतिपादन करना।
अज्ञान—ब्रह्म स्वरूप का आच्छादक अनादि अभाव रूप ।
अभाव—प्राग, प्रध्वंसा, अन्योन्य, सामयिका, अत्यंताभाव।
अविद्या—न विद्यमान हुई आत्मा को भुलाने वाली शक्ति ।
ईश्वर—माया वशिष्ठ, सर्वज्ञ, जगत् का करता, हरता ।
उपशम—संशय व विपर्यय आदि वासनाओं की निवृत्ति ।
उपाधि—आप भिन्न हुई वस्तु को अन्य पदार्थों से अलग करे।
एकान्त—अद्वैत दृष्टि, आसक्ति का त्याग, निर्जन स्थान का वास।

काण्डवेद—कर्म (धर्म), उपासना (भक्ति), ज्ञान (प्रबोध), तीन।
कृतार्थ—करने योग्य, जानने योग्य, प्राप्ति के योग्य की उपलब्धि।
कर्तव्य—स्वधर्म, इन्द्रिय दमन, सद्विचार, ब्रह्मज्ञान आदि प्रयत्न।
करण—ज्ञान की साधक, अन्तःकरण की वृत्ति व ज्ञान इन्द्रियाँ।
कारण—कार्य को सिद्ध करनेवाले उपादान, निमित्त दो हैं।
कोष—ब्रह्म का आच्छादक, अन्न, प्राण, मनो विज्ञान, आनंदमय।
वास्तविक—असली रूप, पारमार्थिक, अधिष्ठान, यथार्थ तत्त्व।
वेदान्त—चारों वेदों का अन्त (निचोड़), ज्ञान के प्रतिपादक वाक्य
वृत्तियाँ—प्रमा, अप्रमा, विकल्प, स्मृति, अभाव पाँच प्रकार की।
विपर्यय—आत्मा को कर्त्ता, देह में अहंता, जगत् में सत्यतादि।
वासना—ध्येय (तीन विपर्यय), नेय, मुक्ति तक देह की निर्वाहक हैं
विशेषण—ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य, शान्त, अद्वैत, निर्विकार इत्यादि
व्यवहार—कहना, जानना, सब क्रियाओं का साधक बर्ताव।
विक्षेप—संसार को प्रत्यक्ष करनेवाली अज्ञान रूप शक्ति।
विवर्त—विषम सत्ता वाला और अन्यथा स्वरूप होता है।
बाध समानाधिकरण—जगत् को बाध करके ब्रह्म में एकता।
पुरुषार्थ—पुरुषों का अर्थ (हितकारी) साधन, ज्ञान, मुक्ति आदि
प्रकृति—जगत् के कार्यों को सिद्ध करनेवाली, त्रिगुणमयी।
पर्याय—एक अर्थों को जनाने वाले अनेक पद (शब्द)।
परिणाम—उपादान के समसत्तावाला, रूप उसका भिन्न होता है
पदार्थ—ब्रह्म, ईश्वर, जीव, जगत्, सब के भेद व सम्बंध, षट्।
पुरुष—असंग हुआ, सर्वत्र पूर्ण रहने वाला चैतन्य रूप।

T

मुक्ति–सब दुःखों की निवृत्ति, परमानन्द प्राप्ति, अवान्तर चार।
मनन–सद्युक्तियों द्वारा जीव, ब्रह्म की एकता का विचार।
मनोनाश–स्वरूप होते मन का बाध व अरूप (सर्वथा अभाव)।
माया–वास्तव में न हुई, त्रयगुणमयी, ईश्वर की उपाधि।
मन–आवरण, विक्षेप, आगामी शुभाशुभ वासना का समूह।
निर्विकल्प-भेद व संशय से रहित अद्वैत ज्ञान व उत्तम समाधि।
निराकार–मन, वाणी का अविषय, अव्यक्त, निर्गुण, सूक्ष्म।
निर्विकार-उत्पत्ति, स्थिति, परिणाम, क्षय, विनाश से रहित।
निरोपाधिक–माया, अविद्या उपाधियों से अतीत शुद्ध ब्रह्म।
निदिध्यासन–विजाति वृत्तियों के बिना सजातियों का प्रवाह।
सिद्धान्त–वेद, वेदान्त करके सिद्ध किया हुआ उत्तम अर्थ।
समाधि–यथार्थ निश्चयात्मक व प्राणायाम जन्य हठरूपी।
समदृष्टि–सब पदार्थों को मिथ्या व ब्रह्म रूप निश्चय करना।
सत्य–नित्य, भाव, अस्ति, हैता, एकरस, त्रिकाल अबाध्य।
साक्षी–असंग हुआ ज्ञाता व अन्तर्वृत्तियों का प्रकाशक।
सर्वज्ञ–निष्काम, निष्पक्ष, ब्रह्मवेत्ता, वेद व सृष्टि के क्रम का ज्ञाता।
सद्गुरु–आत्मज्ञानी, वेदान्त का ज्ञाता, सर्वहितैषी ८०।
सच्छास्त्र–वैराग्य व विचार आदि को निष्पक्ष लिखनेवाला।
साधन–सब आसक्ति का त्याग व सत्य, असत्य का निर्णय।
संन्यास-अन्तर्वासनाओं की निवृत्ति, बाह्य पदार्थों से उपरामता।
संशोधन–तत्त्वं पदों का युक्तियों व स्वानुभव द्वारा निर्णय।
संशय–बहुत पक्षों सहित अनिर्णीत पदार्थों का भासना।

जीवन्मुक्ति–जीवित व्यवहार कर्त्ता भी आत्मा को मुक्त जाने।
जीव–अविद्या वशिष्ठ हुआ चैतन्य, सुख दुःख का आधार।
जगत्–नाम, रूप, व्यवहारों सहित प्रत्यक्ष भासनेवाला।
त्रिक–रूप, अवलोकन, मनस्कार यह तीन जगत् के भेद।
त्रिपुटि–प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय इत्यादि चतुर्दश प्रकार की हैं।
दृष्टान्त–वादी, प्रतिवादी को ज्ञात व द्राष्टान्त के समान।
द्राष्टान्त–जिसके लिए उपमा दीजाय, वह उपमेय पदार्थ।
देहतीन–स्थूल, सूक्ष्म तथा इन दोनों का कारण अज्ञानरूप।
दोष–अति व्याप्ति और अव्याप्ति तथा असम्भव यह तीन हैं।
धर्म–आत्मा के समान जानकर किसी का दुःख न चाहना।
ध्यान–सब ओर से मन को उठाकर अभीष्ट का चिन्तन।
भक्त–आरत, अर्थार्थी, जिज्ञासु, और ज्ञानी यह श्रेष्ठ हैं।
भूमिका–ज्ञान की साधक चित्त व चिदाभास की सात अवस्था।
भाव–सुख, दुःख, हानि, लाभ, बंध, मोक्ष आदि का कारण।
लक्षण–तीनों दोषों से रहित हुआ जो लक्ष्य को सिद्ध करे।
लक्षणा–जहत-अजहत को त्याग, वेदान्तार्थ में भाग त्याग।
लक्ष्य–निर्दोष लक्षण करके जो पदार्थ सिद्ध किया जाता है।
योग–ऐक्यावस्था रूप राजयोग व हठयोग भेद से दो विधि।
युक्ति–अज्ञातार्थ को सहज में सिद्ध करनेवाला दृष्टान्त आदि।
क्षेत्र–स्थूल सूक्ष्म आदि दृश्यमान, पाँच भौतिक सब पदार्थ।
क्षेत्रज्ञ–असंग हुआ क्षेत्र रूप दृश्य का प्रकाशक चैतन्य।८५

---

* ॐ तत्सत् *

॥ साधुओं का कर्त्तव्य ॥

विवक्त सेवी लघ्वाशी यत्वाक्काय मानसः ।
ध्यान योगपरो नित्यं स वैराग्य मुपाश्रितः ॥१॥
अजिह्वः खंडकः पंगु रन्धोबधिर एवचः ।
मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुर्षड भिरेतैर्न संशयः ॥२॥
निस्संगतः मुक्ति पदम यतिनाम संगाद् शेषः ।
प्रभवन्ति दोषः आरुढ़ योगोपि निपातते अधः
संगेन किंतु अल्प सिद्धिः ॥३॥
तितिक्षा ज्ञान वैराग शमादि गुण वर्जितः ।
भिक्षा मात्रेण यो जीवेत स पापि पशुवन्नरः ॥४॥

॥ सब एक ब्रह्म है ॥

नरकाभास है दृश्य सब, ज्ञानानंद अपार ब्रह्म ।
किसलिये धावें कौन को, क्यों धायँ अरु कैसे अहम् ॥
उपराम हो सब ब्रह्म लख, तो पंचसकार† सत्य हों ।
प्रवृत्ति भूलहिं मान रुचि, तव पंचदकार* अवशि हों ॥
सब ताप सातों धातु मय, मल मूत्र संयुत नर्क अति ।
जड़ दुःख असत दृश्य में, क्यों भर्मे करहो तर्क नित ॥
चुपनारायणहि बैठ कुछ, नहिं ज्ञात अच्छा सभी है ।
देखा जाय हाँ राजिते, हित सत्य भाषण तभी है ॥

†सुख, सिद्धि, समता, संतोष, सदगति । *दुख, दोष, दीनता, दुष्टता, दुर्गति ।

हि० ब्रह्मानंद

विज्ञापन

यद्यपि पाठ इसमें सरल, पर भाव उच्च हैं। सदा धीरे धीरे पढ़ते हुए इनको यथार्थ समझ और धारणा करने से पूर्ण लाभ हो सकेगा। जैसे औषधि के खाने से सुख होता है न कि पीसने ही से।

सब वेदों का अन्त (सार) वेदान्त शास्त्र है। इसमें प्रवेश कराने के लिये और सब शास्त्र तथा साधन नियत हुए हैं, यह अर्थ योगवाशिष्ठ आदि के वाक्यों से स्पष्ट होता है।

यथा—ब्रह्म विवेक हुए बिना शास्त्रों का पठन भार (निष्फल), रागी मनुष्यों का ज्ञान भार (निरर्थक), शान्ति हुए बिना मन भार (दुःखदाई) और देहाभिमानी मनुष्यों को शरीर भार (अनर्थ प्रद) होता है।१

तब तक और शास्त्र रूप जन्तु संसार रूप बन में शब्द करते हैं, जब लग वेदान्त रूप प्रबल केसरी सिंह गर्जता नहीं।२

भाव यह है, वेदान्तार्थ में स्थित हुए और शास्त्रों व साधनों की आवश्यकता नहीं रहती, किन्तु ऊपर कही धारणा से ही परम पद की प्राप्ति हो सकती है।

मूल-प्रमाण

भारोऽविवेकिनः शास्त्रं भारो ज्ञानं च रागिनः।
अशान्तस्य मनो भारो भारोऽनात्म विदो वपुः ॥१॥
तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जंबूका विपने यथा।
न गर्जति महा शक्तिर्यावद्वेदान्त केसरी ॥२॥

म० रामनारायण वैदिक धर्मभूषण के प्रबन्ध से
हीरालाल प्रिंटिंग वर्क्स, अलीगढ़ में मुद्रित।

T

T